गायत्री-वरिवस्या

'मन्त्र-सङ्केत' मण्डित

महर्षि विश्वामित्र प्रणीत-ब्रह्मतन्त्रोक्त

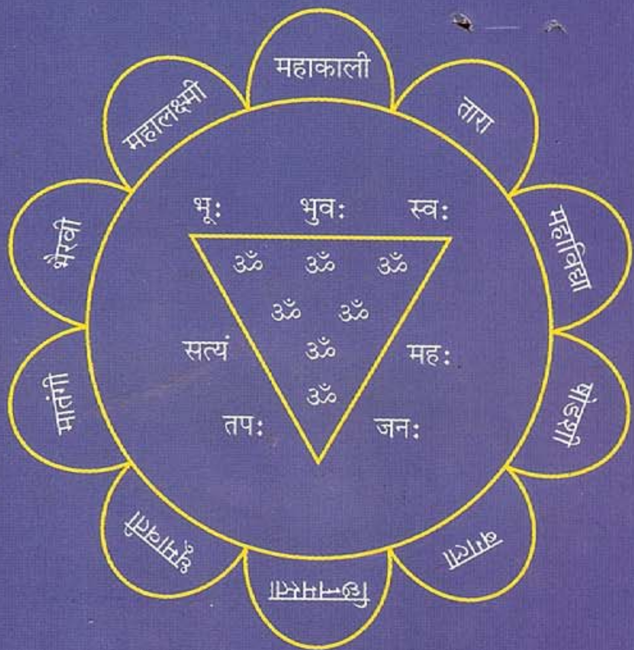
''गायत्री-स्तवराज''

'गायत्री-विमर्श', सर्ववेदसारभूत गायत्री मन्त्र

तथा

निगमागम सम्मत 'पञ्चकाल-सन्ध्या : एक विश्लेषण'

मूलक शोध-लेख समन्वित



प्रधान-सम्पादक

डॉ० मण्डन मिश्र, प्राचार्य

लेखक एवं सम्पादक

डॉ० रुद्रदेव त्रिपाठी

एम० ए० (संस्कृत-हिन्दी), पी-एच० डी०, डी० लिट्०

श्री लालबहादुर शास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ

(मानित विश्वविद्यालय)

नई दिल्ली-११००१६

संस्कृतविद्यापीठग्रन्थमालायाः षष्ठपञ्चाशत्तमं पुष्पम्

गायत्री-वरिवस्या

'मन्त्र-सङ्केत' मण्डित

महर्षि विश्वामित्र प्रणीत-ब्रह्मतन्त्रोक्त

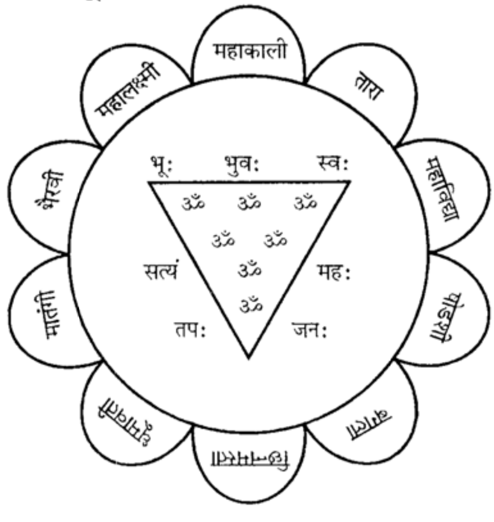
''गायत्री-स्तवराज''

'गायत्री-विमर्श', सर्ववेदसारभूत गायत्री मन्त्र

तथा

निगमागम सम्मत 'पञ्चकाल-सन्ध्या : एक विश्लेषण'

मूलक शोध-लेख समन्वित



प्रधान-सम्पादक
डॉ० मण्डन मिश्र, प्राचार्य

लेखक एवं सम्पादक
डॉ० रुद्रदेव त्रिपाठी
एम० ए० (संस्कृत-हिन्दी), पी-एच० डी०, डी० लिट्०

श्री लालबहादुर शास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ
(मानित विश्वविद्यालय)
नई दिल्ली-११००१६

प्रकाशकः
कुलपतिः,
श्रीलालबहादुरशास्त्रीराष्ट्रियसंस्कृतविद्यापीठम्
(मानित–विश्वविद्यालयः)
कटवारियासरायः, नई दिल्ली–११००१६

द्वितीयं संस्करणम्–२००२ ई०

ISBN : 81-87987-04-9

मूल्यम्–रु० ९८.००

मुद्रक–
अमर प्रिंटिंग प्रैस
८/२५, विजय नगर, दिल्ली–११०००९
दूरभाष : ७२५२३६२

प्रधान-सम्पादकीय

हमारे प्राचीनतम वाङ्मय में अनेक महनीय रत्न छिपे पड़े हैं, जैसे-जैसे मानव ने भौतिक-जगत् के प्रति अपनी अनुरक्ति को अग्रसर किया, उसकी प्राचीन के प्रति उपेक्षा भी बढ़ती गयी, जिसका परिणाम यह हो रहा है कि हम उन रत्नों से वञ्चित होते जा रहे हैं। ऐसा ही एक महान् रत्न है—गायत्री-मन्त्र। जिस महान् संस्कृति का मूल उत्स हिमालय की उन्नततम चोटी से धवल-धारा के रूप में बहा, जिसके उद्गाता महर्षि अपनी ऋतम्भरा प्रज्ञा को उपासना-साधना से संवलित कर तत्त्व प्रस्तुत कर गये और जिसका शाश्वत साहचर्य पाकर भारतीय आर्यजनों ने अपनी अभ्युन्नति के पथ को प्रशस्त किया, उन सब का सारतत्त्व **'गायत्री-मन्त्र'** में निहित है और इसीलिये कहा जाता है—**"न गायत्र्याः परो मन्त्रः"**

सहस्रों वर्षों से चली आई गायत्री-मन्त्र के प्रति द्विजमात्र की प्रगाढ आस्था ने साधकों के लिये विभिन्न मार्गों का उपदेश किया है। ये उपदेश आगम, तन्त्र और स्तोत्रों में गुम्फित कर एक ऐसी मञ्जूषा में रख दिये गये हैं जिनका ज्ञान विशिष्ट चिन्तकों, गुरु-परम्पराओं तथा प्रत्यक्ष निर्देशनों से ही प्राप्य है। बिना सङ्केत के किसी रहस्य को जानने की उत्कण्ठा भी नहीं होती है। वेदों में भी ऐसे सङ्केतदायी मन्त्र बहुधा प्राप्त हैं। यथा —

अप्सु मे सोमोऽब्रवीदन्तर्विश्वानि भेषजा।
अग्निं च विश्वशम्भुवम्॥

ऋग्वेद के इस मन्त्र में सङ्केत किया गया है कि— जलतत्त्व में संसार के सभी रोगों की समस्त औषधियां बीजरूप से विद्यमान हैं और साथ ही जगत् का कल्याण करनेवाली अग्नि भी। यह इस बात का सूचक है कि कायिक एवं मानसिक दोनों प्रकार के रोगों का शमन करने की शक्ति जल में निहित है और इसी के आधार पर जल-चिकित्सा-प्रणाली का विकास हुआ है। वेदमन्त्रों के त्रिविधार्थों के परिज्ञान की सार्थकता भी तभी सत्य होती है जब उनके सङ्केतों से निर्दिष्ट प्रक्रियाओं को आत्मसात् कर तदनुरूप लाभ प्राप्त किये जाएँ।

जैसे घृत दूध में छिपा रहता है पर उसको प्राप्त करने के लिये प्रक्रिया आवश्यक होती है इसी प्रकार मन्त्रद्रष्टा ऋषि विश्वामित्र द्वारा **'गायत्री-स्तवराज'** के माध्यम से तथा अन्यान्य आचार्यों द्वारा विहित-स्तोत्रादि के द्वारा कुछ रहस्य सङ्केतित हैं। विद्यापीठ के शोध-सङ्काय

में वर्षों तक कार्य करते हुए डॉ० रुद्रदेव त्रिपाठी ने अपनी गुरुपरम्परा से भी बहुत कुछ प्राप्त किया है और लिखा भी है। 'गायत्री-वरिवस्या' नामक यह लघु-पुस्तिका उनके अन्वेषण, अध्यवसाय तथा गुरुकृपा की एक लघु परिणति के रूप में सङ्कलित है। इसमें इनके द्वारा सम्पादित स्तोत्र एवं लेख मां गायत्री तथा सन्ध्योपासना के विभिन्न रहस्यों को उद्घाटित करने की दिशा में एक अभिनव प्रयास है। मैं डॉ० त्रिपाठी को इसके लिये बधाई देता हूं और उनके सुखमय दीर्घजीवन की कामना करते हुए विद्वान् पाठकवृन्द इससे अवश्य लाभान्वित होंगे ऐसी आशा करता हूं।

डा० मण्डन मिश्र
प्राचार्य

प्रारम्भिक निवेदन

भगवती गायत्री की उपासना वैदिक-काल की सबसे महत्त्वपूर्ण देन है। महर्षियों की सर्वप्रथम साधना का मुख्यद्वार गायत्री-साधना से ही अनावृत होता था। जो भी प्रसिद्ध सिद्ध-पुरुष हुए हैं, उनकी सिद्धियों की मूलभूमि गायत्री-मन्त्राराधना से ही सुदृढ हुई है, यह भी प्राचीन शास्त्रों, आगमों तथा पुराणों से सुप्रतिपादित है। वशिष्ठ और विश्वामित्र के आख्यान-प्रसङ्गों तथा **'वशिष्ठ-संहिता'** एवं **'विश्वामित्र-कल्प'** आदि ग्रन्थों से भी यही व्यक्त होता है कि वे गायत्री की आराधना करके ही दिव्य सिद्धियां प्राप्त करने में सफल हुए। **'गायत्री-पञ्चाङ्ग'** में चिरकाल से '१- **गायत्री पुरश्चरणविधि'** (जिसमें विश्वामित्र कल्प एवं अन्यान्य तन्त्रों के प्रमाण संगृहीत हैं), २- **गायत्री-कल्प** (विश्वामित्र कृत, जिसमें क्रमशः '(१) **आह्निक-लक्षणयोग**, (२) **आचमनयोग**, (३) **प्राणायामयोग**, (४) **मार्जनयोग**, (५) **अर्घ्यदानयोग**, (६) **आवाहनादियोग** तथा (७) **त्रिकालजपयोग'** नामक सात परिच्छेद हैं, ३-**गायत्र्युपनिषद्** (हृदय), ४- **गायत्री-पद्धति** और ५- **गायत्री-स्तवराज** समाविष्ट हैं। ये सभी गायत्र्युपासना के लिये परमोपयोगी निर्देश करते हैं किन्तु इनमें ऐसे अनेक स्थल भी हैं, जिनका वास्तविक अर्थ अथवा प्रक्रिया आज भी अनुद्घाटित ही है और इनके वास्तविक शुद्धपाठ पर भी विद्वानों ने ध्यान नहीं दिया है।

विश्वामित्रकृत **'श्रीगायत्री-स्तवराज'** जो अब प्रकाशित रूप में उपलब्ध होता है उसमें २७ पद्य ही प्राप्त हैं। इन पद्यों के पाठ भी बहुधा भ्रमपूर्ण हैं जब कि अर्थानुसन्धान से पूर्ण सन्तोष तो होता ही नहीं है। बाल्यकाल से इस स्तोत्र के पाठ और विभिन्न गायत्रीजप की प्रक्रियाओं को हृदयङ्गम करने की भावना से प्रेरित होकर हमने विद्वज्जनों और उपासकों से जिज्ञासाएँ भी व्यक्त कीं, किन्तु कोई उचित समाधान नहीं मिल पाया।

सौभाग्यवश पूज्यपाद स्वामी **श्रीविद्यारण्यजी** (उनके अनुसार 'मूर्खारण्य जी') **महाराज** की कृपा प्राप्त हुई। आपका अगाध वैदुष्य, आगममन्त्रादि का समग्र ज्ञान तथा उपासना सभी महान् थे। जब आपके समक्ष स्तवराज की बात की, तो आपने अपने जीवन से सम्बद्ध घटना का वर्णन 'जिसमें दण्ड-ग्रहण करने पर भी दण्ड त्याग, मेरठ में चौबीस लक्ष गायत्री जप के बाद भी भोजनाच्छादन-रहित ब्राह्मण के लिये वास्तविक गायत्रीजप विधि के परिज्ञान की उत्कण्ठा' प्रेतात्मा द्वारा निर्देश, तदनुसार वशिष्ठसंहिता एवं विश्वामित्रसंहिता की खोज तथा एक विद्वान् द्वारा मूल प्रति न दिखाने के कारण रामगङ्गा में आत्मोत्सर्ग के लिये गहरे जल में पहुंचने पर मां की कृपा से बहते आये उसी ग्रन्थ के पत्रों की प्राप्ति आदि' बहुत ही रोमाञ्चकारी प्रसङ्ग थे'—सुनाया। हमारी लालसा और बढ़ी तथा हमने वे पत्र एवं अन्य उपलब्ध गायत्री-सम्बन्धी साहित्य प्राप्त करने का बराबर वर्षों तक प्रयत्न किया। फलतः जैसी-जैसी हमारी योग्यता और ग्रहण-धारण शक्ति को उन्होंने परखा उसके अनुरूप प्रसाद दिया, किन्तु हमारे दुर्दैववश

उनका कुछ मास पूर्व ही स्वर्गवास हो गया और हमारी कामना अपूर्ण ही रह गयी।

यहां जो '**गायत्री-स्तवराज**' मुद्रित किया जा रहा है यह उन्हीं की कृपा का फल है। इसमें विधिवत् विनियोग, ऋष्यादिन्यास, कर-हृदयादिन्यास और ध्यान के पश्चात् स्तवराज प्रारम्भ होता है। इसके पद्यों की सख्या ६७ है। प्रायः सभी पद्य स्तुत्यात्मक होने के साथ ही गायत्री-मन्त्रविषयक रहस्यों से परिपूर्ण भी हैं। यह हमारे स्तोत्र-साहित्य की 'मन्त्र-यन्त्र-तन्त्रगर्भात्मक' पद्धति में रचित स्तव है। इसकी ३-४ हस्तलिखित पाण्डुलिपियाँ, जो कि साधकों द्वारा सादे कागजों पर अपने ही दैनिक पाठ के लिये लिखी हुई थीं; उन्हीं की कृपा से प्राप्त हुईं। इनमें अनेक पाठान्तर, खण्डित एवं अप-पाठ हैं। संस्कृत-व्याकरण एवं छन्द की दृष्टि से भी ये चिन्त्य हैं तथा बहुत प्रयत्न करने पर भी हमें कोई शुद्ध पाठवाली प्रति नहीं मिल सकी और उनके पास जो 'विश्वामित्रसंहिता' आदि साहित्य था, वह भी यत्र-तत्र पहुंच गया। अतः हमने यह निर्णय किया कि इसे यथाप्राप्त रूप में ही मुद्रित कर प्रकाश में लायें। ऐसा करने से सम्भव है, कहीं किसी के पास से कोई शुद्ध पाठ मिल सके। एक बार हमने इसी स्तवराज की एक प्रति हिमाचल के प्रसिद्ध विद्वान् '**श्रीकाशीनाथजी शास्त्री**' के पास श्रीचामुण्डाजी में देखी थी। उनका कहना था कि यह **अथर्ववेद की पिप्पलादशाखा से** सम्बद्ध है, किन्तु उसका समयाभाव से हम उपयोग नहीं कर पाये। हमें जो चार प्रतियां प्राप्त हैं उन्ही को **क-ख-ग-घ** संज्ञा देकर यहां पाठान्तर दिये गये हैं अतः उनका विशेष परिचय अनावश्यक है।

पूज्य स्वामीजी के निकट बैठकर हमने इस स्तवराज को समझने-पढ़ने का भी प्रयास किया था, तभी उन्होंने कुछ मन्त्र-सङ्केत दिये थे, जिन्हें सङ्कलित कर लिया था किन्तु वे भी पूरे पद्यों पर नहीं ज्ञात हो सके। हमारी यह बलवती इच्छा थी कि इस स्तवराज पर एक विशद '**संस्कृत-भाष्य**' लिखा जाए और अब भी इच्छा है ही। इन्हीं सब दृष्टियों से यह स्तवराज, जो कि '**ब्रह्मतान्त्रिक**' अथवा '**ब्रह्मतन्त्र**' में विश्वामित्र द्वारा प्रणीत है, हम विद्वान् पाठकों और साधकों की सेवा में प्रस्तुत कर रहे हैं। हम यह आशा करते हैं कि इसकी अन्य शुद्ध पाठवाली प्रति और सम्बद्ध पद्यों के रहस्यों को उद्घाटित करनेवाला साहित्य यदि कहीं किसी के पास उपलब्ध हो, तो हमें लोकोपकारार्थ प्रदान कर अथवा सूचित करने की, अवश्य कृपा करेंगे।

इस स्तवराज के साथ ही १-नैगमिकागमिकानुसन्धानयोरालोके '**गायत्री-मन्त्रसाधना-विमर्शः**, एवं २-सर्ववेदसार-भूत गायत्री-मन्त्र, ३-**निगमागमसम्मत-पञ्चकाल-सन्ध्या : एक विश्लेषण, एवं** ४-**त्रिपदा गायत्री-स्तोत्र** को सम्मिलित करके स्वतन्त्र रूप से '**गायत्री-वरिवस्या**' नामक यह लघु-पुस्तिका प्रकाशित की जा रही है। इसके लिये मैं **राष्ट्रिय-संस्कृत-संस्थान के निदेशक, श्रीलालबहादुरशास्त्री केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ के** प्राचार्य एवं शोध-प्रभा "**त्रैमासिक शोध-पत्रिका**" के **प्रधान-सम्पादक** मान्यवर **डा० मण्डन मिश्र जी** का हृदय से आभार मानता हूं। जिनकी कृपा-पूर्वक स्वीकृति से इस दुर्लभ साहित्य के प्रकाशन का मुझे अवसर प्राप्त हुआ।

माघ-पूर्णिमा
२०४३ वि० सं०

विनीत—
डा० रुद्रदेव त्रिपाठी (सम्पादक)

विषयानुक्रमणिका

१—श्री गायत्री-स्तवराजः (मन्त्र सङ्केत-टिप्पण्याऽलङ्कृतः) नैगमिकागमिकयोरनुसन्धानालोके—	१-१६
२—गायत्री-मन्त्र-साधना-विमर्शः	१७-३२
३—सर्ववेद-सारभूत गायत्री मन्त्र	३३-४२
४—निगमागम-सम्मत पञ्चकाल सन्ध्या : एक विश्लेषण	४३-६४
५—रुद्रयामलोक्तं-त्रिपदा-गायत्री-स्तोत्रम्	६५-६७
६—गायत्रीजपाविविचारः	६८-७०

✶

ब्रह्मतन्त्रान्तर्गतः श्रीविश्वामित्र-महर्षि-प्रोक्तः

श्रीगायत्री-स्तवराजः

['मन्त्र-सङ्केत'-टिप्पण्याऽलङ्कृतः]

卐

स्तवराजं प्रवक्ष्यामि, सर्वमन्त्र-फलप्रदम् ।
मन्त्रोद्धारं तथा यन्त्र[1]-साधनं परमोत्तमम् ॥१॥
आसीनो[2] वा शयानो वा, गच्छँस्तिष्ठँस्तथैव च ।
मन्त्रराजं जपेद्[3] भक्त्या, प्रत्यवायो न विद्यते ॥२॥

विनियोगः —

ॐ अस्य श्रीगायत्रीस्तवराजस्तोत्रमहामन्त्रस्य नूतनसृष्टिकर्ता विश्वामित्र **ऋषि**-र्गायत्र्यादि-नानाविधानि च्छन्दांसि सकलजननी चतुष्पदा गायत्री देवता **ॐ भूर्भुवः स्वः ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं** (प्रथमपादो) बीजं, (**ॐ**) **भर्गो देवस्य धीमहि** ॐ (द्वितीयपादः) शक्तिः, **ॐ धियो यो नः प्रचोदयात्** (तृतीयपादः) कीलकं, दशप्रणव-संयुक्ता सव्याहृतिका तुर्यपाद-सहिता गायत्री व्यापकं, मम धर्मार्थकाममोक्षार्थे जपे/पाठे विनियोगः ।

ऋष्यादिन्यासः —

नूतनसृष्टिकर्तृ-विश्वामित्र-ऋषये नमः (शिरसि)। नानाविधच्छन्दोभ्यो नमः (मुखे)। सकलजननी-चतुष्पदा-गायत्रीदेवतायै नमः (हृदये)। ॐ भूर्भुवः स्वः ॐ तत्सवितुर्वरेण्य बीजाय नमः (गुह्ये)। ॐ भर्गो देवस्य धीमहि शक्तये नमः (पादयोः)। ॐ धियो यो नः प्रचोदयात् कीलकाय नमः (नाभौ)। **ॐ** १० भूर्भुवः स्वः ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं ॐ भर्गो देवस्य धीमहि ॐ धियो यो नः प्रचोदयात् ॐ परोरजसे सावदोम् व्यापकाय नमः (सर्वाङ्गे)। विनियोगाय नमः (करसम्पुटे)।

कर-षडङ्ग-न्यासाः —	(प्रथमवारम्)	(द्वितीयवारम्)।
ॐ भूः तत्सवितुर्वरेण्यं ह्लां	(अङ्गुष्ठाभ्यां नमः।	हृदयाय नमः)।
ॐ भुवः भर्गो देवस्य धीमहि ह्लीं	(तर्जनीभ्यां नमः।	शिरसे स्वाहा)।
ॐ स्वः धियो यो नः प्रचोदयात् ह्लूं	(मध्यमाभ्यां नमः।	शिखायै वषट्)।
ॐ महः परोरजसे सावदोम् ह्लैं	(अनामिकाभ्यां नमः।	कवचाय हुम्)।
ॐ जनः आपो ज्योतीरसोऽमृतम् ह्लौं	(कनिष्ठिकाभ्यां नमः।	नेत्रत्रयाय वौषट्)।
ॐ तपः सत्यं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरोम् ह्लः	(करतल-करपृष्ठाभ्यां नमः।	अस्त्राय फट्)।

---

१. यन्त्रं साधनं, २. आसनस्थः, ३. पठेद् इत्यादि-पाठान्ताराणि ।

गायत्री-ध्यानम्

गायत्रीं वेदधात्रीं शतमखफलदां वेदशास्त्रैकवेद्यां,
चिच्छक्तिं ब्रह्मविद्यां परमशिवपदां[1] श्रीपदं वै[2] करोति।
सर्वोत्कृष्टं पदं तत्सवितुरनु पदान्ते[3] वरेण्यं शरण्यं,
भर्गो देवस्य धीमह्यभिदधति धियो यो न इत्येव तेजः[4]॥

(इति ध्यात्वा मानसैः पञ्चोपचारैः सम्पूज्य स्तवराजं पठेत्।)

मूलपाठारम्भः

[5]साम्राज्यबीजं प्रणवत्रिपादं,[6] सव्यापसव्यं प्रजपेत् सहस्रम्।
सम्पूर्णकामं[7] प्रणवं विभूतिं,[8] तथा भवेद् वाक्यविचित्रवाणी[9] ॥१॥

सङ्केतकृन्मङ्गलम् —

माङ्गल्यं दिशतान्नित्यं वेदमाता गरीयसी।
गायत्री निरतं भक्त्या द्विजवृन्दैर्निषेविता ॥१॥
गुरवो विजयन्तां ते विद्यारण्याभिधाः सदा।
येषां कृपा-प्रसादेन मन्त्राः सन्ति प्रकाशिताः ॥२॥
गायत्री स्तवराजेऽस्मिन् पद्येषु ग्रथिताः क्वचित्।
मन्त्राः सङ्केतरूपेण 'रुद्र'स्तान् विवृणोम्यहम् ॥३॥

(मन्त्र-सङ्केतः)[10]—सौं सकल ह्रीं ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं, भर्गो देवस्य धीमहि, धियो यो नः प्रचोदयात्, त्यादचोप्र नः यो योधि हिमधी स्यवदेर्गोभ ण्यंरेवंतुविस तत् ॐ ह्रीं सकल सौं।

ओङ्कार-शब्दोऽखिललौकिकं च, श्रीभूर्भुवः स्वर्महरेव युक्तम्[11]।
जनस्तपः सत्यमथोदितं च, कैलास-वैकुण्ठमयोर्ध्वकेशः[12] ॥२॥

(म० स०) —ॐ भूर्भुवः स्वः महः जनः तपः सत्यं श्रीं तत्सवितुर्वरेण्यं, भर्गो देवस्य धीमहि, धियो यो नः प्रचोदयात्, ॐ भूर्भुवः स्वः महः जनः तपः सत्यं श्रीं।

---

१. शिवपरं २. व्याकरोति पा.। ३. पदं ते। ४. यो नः प्रचोदयादित्यौर्वतेजः (इति पाठान्तरम्। तच्च छन्दोभङ्गाय कल्पत इत्यनङ्गीकार्यम्।)

५- घ- प्रताविदं चतुर्थं पद्यम्।

६. प्रणवं त्रिपादं। ७. सोमं। ८. प्रभवेद्विभूतिर्भवेत् तथा सोमप्र०। ९. वाक्य-विचित्रवर्णाम् ॥४॥

१०. प्रस्तुत स्तवराज के प्रत्येक पद्य में गायत्री-मन्त्र के विभिन्न प्रकार के मन्त्रों के सङ्केत प्राप्त हैं। उन्हीं को यहां क्रम से दिया जा रहा है। इन मन्त्रों के प्रयोग गुरुमुख से ज्ञातव्य हैं। (सम्पादक)

११. सूक्तम्। १२. पयोधिकेशम्, (क) पयोधिकेश !।

गायत्री-पद-महिमा —

तदष्टरूपे[1]ऽष्टक-भैरवाश्च, यद् विश्वरूपं सवितुः प्रसिद्धम्।
चैतन्यमेतत् कथितं वरेण्यं, यत् सच्चिदानन्दपदं च भर्गः ॥३॥

भर्गो हि देवः परमेश्वरोऽसौ, तद्[2] धीमहीतीश्वरमेव नित्यम्।
यो नो धियो यः परभक्तिभाजं[3], प्रचोदयात् सा त्रिपदा प्रसिद्धा ॥४॥

मं० स०—यहां जप के समय गायत्री-मन्त्र के पदों का अर्थ-चिन्तन करने का सङ्केत किया गया है।

ततः परो वै रजसे प्रसिद्धं, यत् सावदों तत् कथितं चतुर्थम्।
पादं त्रिपाद्याः परमेश्वरेण, त्रय्येहितं[4] धारयितुं नरेण[5] ॥५॥

(म० स०) —(ॐ भूर्भुवः स्वः) तत्सवितुर्वरेण्यं, भर्गो देवस्य धीमहि, धियो यो नः प्रचोदयात्, परो रजसे सावदोम्। इयं (तुरीयपादसहिता गायत्री।)

अनामयं[6] तत्सवितुर्वरेण्यं, भर्गो हि देवस्य शिवाय[7] धीमहि।
ऋतं सतां क्लेशहरं हिताय, धियो हि यो नः सततं प्रचोदयात्[8] ॥६॥

ततः परो वै रजसे च सावदों, श्रीं-बीजयुक्तं कथितं चतुर्थम्।
भूरादि-सप्त[9]-प्रणवोदितं वै, तद् विंशतेरक्षर[10]कार्यसिद्धिः ॥७॥

(म० स०) —ॐ भूः ॐ भुवः ॐ स्वः ॐ महः ॐ जनः ॐ तपः ॐ सत्यं ॐ ऐं तत्सवितु० ॐ क्लीं भर्गो देवस्य० ॐ सौः धियो यो नः० ॐ श्रीं परो रजसे सावदोम्।

गायत्री-मन्त्र-स्वरूपम् —

ब्रह्मस्थाने त्रिकोणे प्रणवपरिलसद् व्याहृतिं[11] सप्त त्रीणि,
सर्वं[12] दिक्साध्यमेकं सकल-शिवमयं सर्वकामप्रदोग्ध्री[13]।

---

१. सच्छब्दरूपे० (क), तच्छब्द० (ख)।

२. तं—(क), ३. भाजः।

४. नार्यैहितं पाठा० (क), ५. नराणाम् (क)

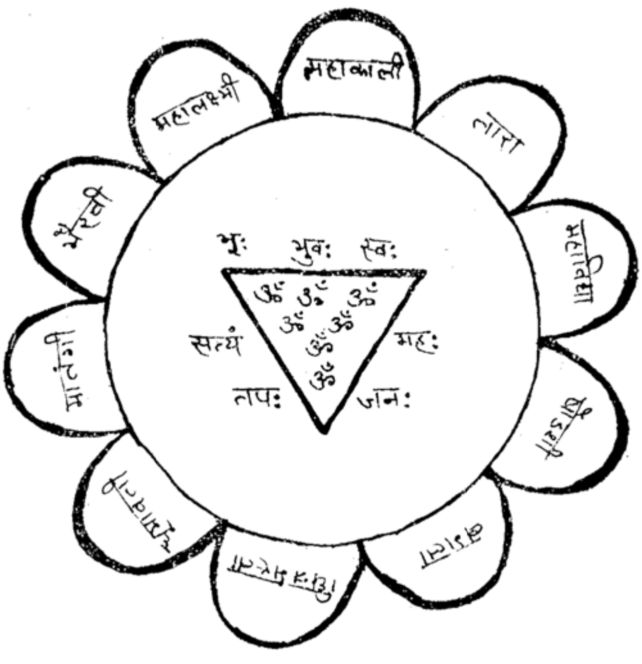
६. अनाम यत्तत् (घ) शुभाम०(क) सुखाय (घ), ७. शर्न(क), ८. इतः परं—गायत्री-हृदयमिति पद्यमपि घ-प्रतौ।

९. सर्व० (क), १०. विंशतिम० (क) द्वात्रिंशती० (घ)।

११. व्याहृती० (क), १२. सर्वा (क), सर्वे दिक्संख्यभागं० (घ), १३. कलिमलध्वंस-चक्रस्वरूपम्। इति पाठा०, (क) कामं प्रदोग्धि।

दिग्बन्धं धीमहीति त्रिपद-पदमितं[1] यो महः सर्वविश्वं,
विश्वं कामप्रभावं सकल-कलिमलध्वंस-चक्रस्वरूपम् ।।८।।

(म० स०) —१. इस पद्य में गायत्री-यन्त्र का सङ्केत है। यह यन्त्र त्रिकोण और षोडशदल कमल से बनता है तथा त्रिकोण में ७ प्रणव, उसके बाहर सप्तव्याहृतियां, कमलदलों में दस महाविद्याओं के नाम तथा दलों के बाहर दस अवतारों के नाम लिखे जाते हैं। यन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है—



भूरादिसप्त प्रणवादि सप्त, देवी त्रिपादा त्रिशिरः शिखानि ।
परं चतुर्थं प्रणवोदितानि, पश्चाद्भवो ध्यानशिवं शिवानि ! ।।९।।

(म० स०) —**ॐ** भूः ॐ सत्यं ॐ तत् सवितु० ॐ भर्गो० ॐ धियो० ॐ आपो ज्योती रसोऽमृतं ॐ अर्चयन्ति तपः सत्यं मधु क्षरन्ति यद् ऋचः, ॐ परो रजसे सावदोम् ।।१।। ॐ अर्चयन्ति तपः सत्यं मधु क्षरन्ति यद्ऋचः । ॐ परो रजसे सावदोम् । **ॐ भूः ॐ सत्यं** ॐ तत् सवितु० ॐ भर्गो० ॐ धियो० **ॐ आपो ज्योती रसोऽमृतं** ॐ परो रजसे सावदोम् ।

---

१. शिवमयी० । पाठा० (क), परिमितं, पदयुतं (घ) ।

कलात्रयसमन्वितं चक्रचिन्तनम् —

मूलाधारे हुतवह[1]कला-मिश्रितं भूर्भुवः स्व-
ब्रह्मस्थाने परम-गहने तत्सवि(वी)तुर्वरेण्यम् ।
भर्गो देवस्य[2] च शशिकला[3] धीमहीत्येकरूपं,
धी(धी) यो यो नः परमममृतं चोदयाद्[4] वै परस्मात् ॥१०॥

मं०सं०—यहां गायत्री-मन्त्र का शरीरस्थ तीन प्रमुख चक्रों में चिन्तन का प्रकार बतलाया है जिसमें अग्नि, सूर्य और चन्द्रमा की कलाओं के साथ मन्त्र-जप का विधान है ।

ब्रह्मास्त्र-ध्यानम् —

सर्वास्त्रोद्दीप्तहस्तं[5] सुररिपु-रुधिरक्रोध[6]-मुद्राङ्कितास्यं,[7]
भूषारत्नोज्ज्वलाङ्गं द्विजवर-हृदयावास[8]मादित्यरूपम्[9] ।
मन्देहानाम-दैत्य-ग्रसनपटुतरं घोर-जिह्वा-करालं,
ध्यायेद् ब्रह्मास्त्रमाद्यं लयसमयमहा[10]वीतिहोत्र-स्वरूपम् ॥११॥

मं०सं०—यह पद्य षडर्घ्य-प्रयोग में अर्घ्यदान के समय ब्रह्मास्त्र के ध्यान में प्रयुक्त होता है । इसका मन्त्र अन्यत्र दिया गया है ।

ब्रह्मदण्ड-ध्यानम् —

सर्वास्त्राणां स्वशक्त्या[11] कृतमरुणरणत्कार-घोरैकपिण्डं,
ब्रह्माण्डान्तर्विधाना[12] भवनकरमदो ऋग्विशेषोग्रमूर्तिः ।
जाज्वल्योग्रं त्रिनेत्रं रविरुपजपति स्वादितं[13] शास्त्रजालं,
भालाक्षाम्भोजनाभि[14]र्भुजभुवनलयं चिन्तये ब्रह्मदण्डम्[15] ॥१२॥

मं०सं० —यह भी पूर्ववत् अर्घ्यदान के समय ब्रह्मदण्ड के ध्यान का पद्य है ।

---

१. धृतबहु० । २. देवं नुतनययुतं० । ३. नुतनयतु तं — (क), त्येकयुक्तं० । (क), त्येवरूपं (घ), विधानं, अत्र पद्ये पदे सवितुरितिवि-इत्यस्य तथा धियो-इत्यत्र धि-इत्यस्य छन्दोभङ्गभिया दीर्घेकार पाठ आर्षः स्वीकार्यः । ४. प्रचोदयात् (क) ।

५. सर्वास्त्रादित्यहस्ता० सर्वास्त्रैर्दीप्ति० (क) सर्वैश्चादित्यहस्ता (घ) ६. रुधिराक्षोद० रुधिराक्रोधा० । ७. मुद्राङ्किताढ्यं० । मुद्राङ्कितं च (घ), ८. हृदयानन्द० (क), ९. पटुनटा-घोरनिद्रा०, १०. (बीजम्), ११. महा० भूषारत्न० (क) इति पदव्यत्ययः ।

१२. सर्वास्त्राणां च शक्त्या क्रम०(घ)(क), १३. द्विजानामवनिकृतमिदं—ऋग्विशेषोग्रमूर्तिम् । (क), १४. रुपजयति(घ)१५. मन्त्रजालं(घ), १६. भालाक्षाम्भोजनाभां(घ) योजना ।

ब्रह्मशीर्ष-ध्यानम् —

तेजःपुञ्जमयं प्रसन्नममलं चाध्यात्मकं योगहृद्,[1]
ध्यायेद् भूषण[2]-भूषणं निरुपमं श्रेष्ठं[3] त्रिमूर्त्यात्मकम्।
नित्यं भास्करवैरिवाहनघनासृक्[4]पूर्ण-पूर्णार्थदं,
ह्यस्त्रं ब्रह्मशिरोभिधानममलं ध्यायेद् द्विजः कर्मगः ॥१३॥

मं०सं०—यह भी पूर्ववत् अर्घ्यदान के समय ब्रह्मशीर्ष के ध्यान का पद्य है।

गायत्र्या विराट्स्वरूप-चिन्तम् —

अधिलोकं[5] यस्य पादौ[6], यस्याधिज्यौतिषं मुखम्।
अधिविध्यं पक्षयुगं, यस्य पक्षमधि प्रभुः ॥१४॥
अधिदेवं यस्य गृहं, देहं यस्याधिभौतिकम्।
यस्य स्वरूपमध्यात्मं, तत्स्वरूपं विचिन्तयेत् ॥१५॥

(म० स०)—ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्। ॐ परो रजसे सावदोम्। ॐ आपो ज्योती रसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरोम्। ॐ अर्चयन्ति तपः सत्यं मधु क्षरन्ति यद् ऋचः। नमः।

अस्त्र-त्रय-मन्त्र प्रयोग-फलनिरूपणम् —

अस्त्रं शस्त्रहतं त्वघोरसहितं दण्डेन बीजाहतं,[7]
चादित्यादिहितं शिरोऽन्तसहितं पापक्षयार्थं परम्।
तुर्य्यान्त्यादि-विलोममन्त्रपठनं बीजं शिखान्तोर्ध्वकं,
नित्यं कालनियम्य विप्रविदुषां किं दुष्कृतं भूसुराः[8] ॥१६॥

मं०सं०—यहां अघोर-मन्त्र का भी सङ्केत है, जिसका स्मरण भी गायत्री-मन्त्रजापी के लिये आवश्यक माना गया है।

---

१. योगि० (क), २. भासुर० (क-घ)। ३. वाहपिशितं० (क), ४. ०प्रकर्मादित, विकर्मा० (क) सृष्टं (घ) शिरोऽभिघात० (घ)।

५. अधिलोकस्य यत्पादौ० (क) अधो लोकं० (क-घ) ६. वचः। नाभौ ब्रह्म हृदि देवि ललाटे शिवसन्निभम् ॥१६॥ (क.)

७. वाजीहतं० (घ) ८. (चिन्त्यः पाठः ?)

ब्रह्मास्त्रं ब्रह्मदण्डं शिरसि शिखिमहद् ब्रह्मशीर्षं[1] नमोऽन्तं,
सूक्तं नारायणोक्तं[2] प्रणवमथ महावाक्यसिद्धान्तमूलम् ।
तुर्यं त्रीणि द्वितीयं प्रथम[3]मनु-महावेद-वेदान्तसूक्तं,
नित्यं स्मृत्यानुसारं नियमितचरितं मूलमन्त्रं नमोऽन्तम् ॥१७॥

मं०सं०—यहां नारायण सूक्त, पुरुषसूक्त एवं तत्त्वमसि इत्यादि महावाक्य सिद्धान्तों का निर्देश है, जो कि प्रयोग की दृष्टि से ज्ञातव्य है।

त्रिकालनित्यं त्रिशतं त्रिवारं, त्रिपाद-तुर्यं त्रिविधं त्रिवारम्[4] ।
त्रिलोकमाद्यं परमं त्रिलोकं[5], गायत्रिमन्त्रं[6] प्रजपेत् सहस्रम् ॥१८॥

(म० स०) —ॐ चतुर्थपादयुक्तं (मूलमन्त्रं) शतत्रयं त्रिकालं जपेत् । शेषं त्रिव्याहृति-युतं चतुर्थपादं त्रिकालमेकसहस्रं जपेत् । ॐ परो रजसे सावदोम् ॐ भूर्भुवः स्वः ॐ परो रजसे सावदोम् । इति ।

पादत्रयं[7] ब्रह्मपदत्रयं च, कालत्रयं चैव शतत्रयं च ।
जप्त्वा फलं प्राप्य महाप्रभावं[8], बिन्दुत्रयं बन्धविमोक्षणं च ॥१९॥

(म० स०) —ॐ परो रजसे० ॐ आपो० ॐ तत्सवितु० ॐ भर्गो० ॐ धियो० ह्रौं ॐ भूर्भुवः स्वरोम् ।

पीठत्रयं ध्यानपदत्रयं च, परोरजः पञ्चपदत्रयं च ।
बिन्दुत्रयं बन्धत्रयं शिवं च, कालत्रयं ज्ञानपरं भुवं च ॥२०॥

तान्त्रिक-मन्त्रराज विधानम् —

बालानुलोमं त्रिपदानुलोमं, बालाविलोमं त्रिपदाविलोमम् ।
एवं जपेत्तान्त्रिकमन्त्रराजमाद्यन्तबीजं प्रणतोऽस्मि नित्यम्[10] ॥२१॥

(म०प०) —ॐ ऐं क्लीं सौः (गायत्री) सौः क्लीं ऐं ॐ गायत्रीमन्त्र के लोम-विलोम मन्त्रजप का यह विधान है।

---

१. महविषजान् ब्रह्मशीर्षे(घ), २. नारायणोक्तं ॐ (घ), प्रणववरमहान् ब्रह्मसिद्धान्त-मूलम् । (घ), ३. प्रणव० ।

४. त्रितारम् (क), ५. परमस्त्रि० (क), परितस्त्रिं ६. गायत्र० (क) ७. शेषे ? ।

८. पदत्रय—० (क), ९. प्राप्तमहत्प्रमाणं०, ३. बन्धविमोक्षणे च । (क) (घ) ।

१०. कालत्रयं ज्ञानभुवं च बाला—(बाला) नुलोमं त्रिपदानुलोमम् ।
बालानुलोमं किल मृत्युराजमान्द्यन्तबिन्दुं प्रणतोऽस्मि नित्यम् ॥ इत्यपि (घ) पाठः।

तुर्यं त्रिपादं[1] प्रणवादिमन्त्रं, तारत्रयं तुर्यपदान्तबिन्दुः।
तथैव बालात्रयबीजगर्भं, सहस्रजाप्यं[2] प्रणतोऽस्मि नित्यम् ॥२२॥

(म० स०) ॐ परो रजसे०[3] ॐ भूर्भुवः स्वः ऐं तत्सवितु० ॐ क्लीं भर्गो० ॐ सौः धियो० ॐ ऐं ह्रीं क्लीं श्रीं परो०।

गायत्री जपस्य यौगिकाः प्रकाराः —

सर्वोत्तमं प्रणव-पूर्वक-मन्त्रराजं, सद्भोगभोग्यसुखसम्पदि हेतुभूतम्।
नाडीत्रयं प्रणवसम्पुटितं नियम्य, यद् भावितं[4] सकलसाधकचित्तवृत्तिम् ॥२३॥

(म० स०) —ॐ तत्सवितु० (फलं भाग्यसुखदं)। ॐ तत्सवितु० ॐ भर्गो० ॐ धियो० ॐ (फलं) सकलज्ञानम्।

अन्तर्बाह्यमति[5]प्रभावमनिशं निःशेषतो रेचयेत्,
सम्यग्ज्ञानमतं च[6] लक्षणपरं यं[7] पूरयेदात्मनि।
प्रत्यग् ब्रह्मणि जीवभावमखिलं लीनं गतं[8] कुम्भके,
प्राणायामनिगर्भ-ब्रह्मविधिना[9] निर्वाणयोगी भवेत् ॥२४॥

सञ्चिन्तयेत् त्रिपद-तुर्य-शिरः-शिखान्तं,
सव्याहृति-प्रणवसम्पुटितं त्रिपादम्।
ध्यातं[10] प्रभातसमये दशसप्तवारं[11],
सर्वोत्तमं सकलमन्त्रपदं[12] वरिष्ठम् ॥२५॥

(म० स०) —ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं, ॐ ॐ भर्गो देवस्य धीमहि ॐ ॐ धियो यो नः प्रचोदयात् ॐ परो रजसे सावदोम् ॐ ॐ आपो ज्योती रसोऽमृतं ब्रह्मभूर्भुवः स्वरोम् ॐ ॐ अर्चयन्ति तपः सत्यं मधु क्षरन्ति यद्ऋचः ॐ।

ओङ्कारमादिगुरुमूल-मनुं प्रलब्धं,
षष्ट्यात्मकं[13] प्रणवसम्पुटितं त्रिपादम्।
[14]अङ्गप्रधानसहितं भुवि सप्तलोकं,
सर्वोत्तमं दशपदं दशबीजराजम् ॥२६॥

(म०स०) —ॐ ह्री अं···क्षं ॐ तत्सवितु० ॐ ॐ भूः नमः ॐ ॐ भुवः स्वाहा ॐ ॐ स्वः वषट् ॐ ॐ महः हुं ॐ ॐ जनः वौषट् ॐ ॐ तपः अस्त्राय फट् ॐ ॐ सत्यं नमः।

---

१. वारं? त्रिपाद— (क) २. जप्त (क) ३. ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं?।
४. यद्भासितं० सद्— (घ), माधन० (घ)।
५. मणि० (क), अन्तर्बाह्यमतं (घ), वाच्य० ज० ६. मनन्त० (क) ७. यत्, (क.)।
८. गते (क) ९. त्रिब्रह्मगर्भवि०।
१०. ध्यानं (क) ११. सप्तशिश्च (क) १२. परं विशिष्टम् (क)।
१२. प्रणवमष्टपदं त्रितारम। १३. षष्ठात्मकं (क), १४. विश्वं० (क) प्रवृद्धं।

सिद्धं प्रसिद्ध-पुरुषोत्तम-वेदवेद्य—
मादित्रयं जनकमस्य समानसर्वम्[1]।
अन्योन्यभावगुणनिर्गुणमन्त्रयोगं,
सर्वोत्तमं प्रणवपूर्वकमन्त्रराजम् ॥२७॥

(म०स०) —अं···क्षं, १६ मन्त्राः पुरुषसूक्तस्य, ॐ ४, मन्त्र (गायत्री) ॐ ॐ तत्स-वितु० परो० भर्गो० परो० धियो० परो०।

सर्वोत्तमं त्रिपद-तुर्यक-पूर्वमुक्तं,[2]
सव्याहृति[3] त्रिगुणसम्पुटितं शिखान्तम्।
सम्यग् गुरूक्तविधिपूर्वकवायुरोध-[4]
मायुष्यहेतुकरणं दशबीजराजम्[5] ॥२८॥

(म० स०) —सप्तव्याहृति-सहिता गायत्री।

गायत्र्या आयुष्कर-मन्त्रविधानम् —

वेदादिमायललिता[6]क्षरकामराजं,
सव्याहृति-प्रणवमन्त्रपदं त्रितारम्।
तारं त्रिपाद-सहितं शिरसा तुरीय—
मायुः करोति सुखदं सकलं नियम्य ॥२९॥

(म० स०) —ॐ ह्रीं हसकहलह्रीं सकल ह्रीं कएईल ह्रीं क्लीं भूः···सत्यं, ॐ अं कं चं टं तं पं यं शं ह्रीं श्रीं (पञ्चपदा गायत्री)। १- तत्स० २- भर्गो० ३- धियो० ४- परोरजसे० ५- आपो०।

स्वाधारमादिकुलकुण्डलिगर्भचक्रं,
षट्कोणबिम्बसहितं त्रिपदा तुरीयम्।
सप्तान्तचक्रविलसत्-प्रणवं त्रिबीजं,
ब्रह्माण्ड-खण्डसहितं परमात्मरूपम् ॥३०॥

तुरीय-यन्त्र-विधानम् —

तारं सुवृत्तं ह्यनलद्वयान्तं, कोणे तु ताराङ्कितताग्युग्मम्।
युग्मस्य मध्ये मनुवेष्टितं च, बालाक्षरं चैव तुरीय-यन्त्रम् ॥३१॥

(म०सं०)—यहां 'तुरीय-यन्त्र' बनाने का सङ्केत है। इसमें गोलाकार में ॐ तथा 'रं रं' बीज तथा कोनों में ओङ्कार-युग्म वाला मन्त्र के साथ गायत्री मन्त्र को वेष्टित करना चाहिये।

---

१. वर्णम् (घ)। २. सर्वयुक्तं (क), ३. सव्याहृतिं (क), ४. रोध आयुष्य०।
५. दशराजबीजम् (क) ६. सव्याहृतिं प्रणवमष्टपदं त्रितारम् (क)।

गायत्री-मन्त्र-महिमा —

शुभं शिवं शोभनमस्तु मह्यं, सौभाग्यभोगोत्सवमस्तु नित्यम्।
प्रकाशविद्यात्रयशास्त्रसर्वं[१] भजेन्महामन्त्रफलं प्रिये वै[२] ॥३२॥

नित्यं मुक्तिपदं नियम्य पवनं निर्घोप-शक्तित्रयं[३],
सम्यग्ज्ञानगुरूपदेशविधिवद् देवीं शिखां[४] तामपि।
षष्टयेकोत्तरसंख्ययाऽनु[५]गतसौषुम्नादिमार्गत्रयीं,
ध्यायेन्नित्यमशेषदेवजननीं देवीं त्रिसन्ध्यामयीम्[६] ॥३३॥

(म० स०) — सप्तव्याहृति० तत्सवितु० भर्गो० धियो यो नः० आपो ज्योती० अर्चयन्ती० अं···क्षं ॥

गायत्रीं सकलागमार्थविदुषां सौरस्यबीजेश्वरीं[७],
सर्वाम्नायसमस्तमन्त्रजननीं सर्वज्ञधामेश्वरीम्।
ब्रह्मादित्रयसम्पुटार्थकरणीं[८] संसारपारायणीम्,
सन्ध्यां सर्वसमानतन्त्रपरया[९] ब्रह्मानुसन्धायिनीम् ॥२४॥

एकद्वित्रिचतुःसमानगणना वर्णाष्टकं पादयोः,
पादादौ प्रणवादिमन्त्रपठने मन्त्रत्रयीसम्पुटाम्।
सन्ध्यायां त्रिपदं पठेत् परतरं सायं तुरीया-युतं,[१०]
नित्यानित्यमनन्तकोटिफलदं प्रात[११]र्नमस्कुर्महे ॥३५॥

मुक्तिप्रद-गायत्री-मन्त्र-विधानम् —

ओजोसीति सहोस्यहो बलमसि[१२] भ्राजोऽसि तेजस्विनी,
वर्चस्वी सवितागिनसोमममृतं रूपं परं धीमहि[१३]।
देवानां द्विजवर्यतां मुनिगणे मुक्त्यर्थिता-शातिता —
मोमित्येकमृचं पठन्ति यमिनो यं यं स्मरेत् प्राप्नुयात् ॥३६॥

मं०सं०—यहां 'ओजोसि सहोसि' इत्यादि मन्त्र के जप का विधान है जो कि मुक्ति-कामना का पूरक प्रयोग है।

---

१. प्रकाशनित्यं (ां) प्रियशास्त्रसर्वं, नित्यां (घ), २. भवन्ति।

३. सप्तत्रयीं, ४. शिखान्तामयीं। ५. मनुगतः। ६. ध्यायन्नित्यसमस्तवेदजननी गायत्रिसन्ध्यामयी ॥२६॥ सौषुम्नमार्गत्रयां, (ग) नित्यसमस्तदेवजननीं।

७. जीवेश्वरीं (घ) ८. परमां (घ) ९. सम्पुटार्ह०

१०. (ग) सन्ध्या द्वित्रिपदं जपेत् परतरे सायं तुरीयासह (घ) सन्ध्यादि-त्रिपदं० नित्यं नित्यमनन्त०। (ग—घ) ११. प्रातर्भजेन्नित्यशः।

१२. सहोसि वै बलमसि १३. धामसि। (ग. घ.) सह्रोस्यथो बलमसि।

ओमित्येकमजस्वरूपममलं तत्सप्तधा भाजितं,
तारं तत्र[1] समन्वितं परतरे पादत्रयं गर्भितम्।
आपो ज्योतिरसोऽमृतं जनमहः सत्यं तपः स्वर्भुव-
र्भूयोभूय नमामि भूर्भुव-स्वरोमित्येव तन्मन्त्रकम्[2] ।।३७।।

आदौ बिन्दुमनुस्मरन्[3] परतरं बालात्रिवर्णोच्चरन्,
व्याहृत्यादि-सबिन्दुयुक्तत्रिपदा-तारत्रयं तुर्यकम्[4]।
आरोहादवरोहतः क्रमगता श्रीकुण्डलीत्थं स्थिता[5],
देवीमानसपङ्कजे त्रिनयना पञ्चानना[6] पातु माम्।।३८।।

सर्वे सर्ववशे समस्तसमये सत्यात्मिके सात्त्विके,
सावित्रीसवितात्मिके शशियुते[7] साङ्ख्यायनीगोत्रजे[8]।
सन्ध्या त्रीण्युपकल्प्य सङ्ग्रहविधिः सन्ध्याभिधानात्मिके[9],
गायत्रीप्रणवादिमन्त्रगुरुणा सम्प्राप्य तस्मै नमः।।३७।।

क्षेमं दिव्यमनोरथाः परतरे चेतः समाधीयतां[10],
ज्ञानं नित्यवरेण्यमेतदमलं[11] देवस्य भर्गो धियम्[12]।
मोक्षश्रीविजयार्थिनोऽथ सवितुः श्रेष्ठं विधिस्तत्पदं[13],
प्रज्ञा मेऽथ प्रचोदयात् प्रतिदिनं यो नः पदं पातु माम्।।४०।।

सत्यं तत्सवितुर्वरेण्यविरलं विश्वादिमायात्मकं,
सर्वाद्यं प्रतिपादमुक्तरमया[14] तारं तथा मन्मथम्।
तुर्यान्यित्रितयं[15] द्वितीयमपरं संयोगसंव्याहृतिं,
सर्वाम्नायमनोमयीं मनसिजां ध्यायामि देवीं पराम्।।४१।।

आदौ गायत्रिमन्त्रं गुरुकृतनियमं धर्मकर्मानुकूलं,
सर्वाद्यं सारभूतं सकलमनुमयं देवतानामगम्यम्।

---

१. सत्र (ग घ) २. स्वरोमित्येव तन्मन्त्रकम् (घ), स्वरोमित्यन्त—(ग)।

३. बिन्दु-समुच्चरन्, ४. तुर्यगाम् (ग), ५. बिन्दु समुच्चरेत् (घ) ६. तुर्यगा (घ), ७. संस्थिता। ८. त्रिनयने पञ्चानने। (ग)।

९. शिवनुते (घ), १०. साङ्ख्यायने —(घ) (ग), ११. विधानात्मके। (ग)।

१२. दिव्यमनोरथं चैतत्समाधीमहि, (घ), १३. देवभजनं, देवस्य भर्गो धियः। १४. मोक्षार्थी (घ), १५. विजयार्थिनः सवितु स श्रेष्ठं,(ग-घ), विधीनां पदं, (ग) प्रज्ञामेव (ग)।

१६. पादयुक्तरमया (ग), २. तुर्यान्तं० (ग-घ)।

देवानां पूर्वदेवं[1] द्विजकुलमुनिभिः सिद्धविद्याधराद्यैः,
को वा वक्तुं समर्थस्तव मनुमहिमा बीजराजादिमूलम् ॥४२॥

गायत्रीं त्रिपदां त्रिबीजसहितां त्रिव्याहृतिं त्रैपदां[2],
त्रिब्रह्म त्रिगुणां त्रिकालनियमां वेदत्रयीं तां पराम्।
साङ्ख्यादित्रयरूपिणीं त्रिनयनां मातृत्रयीं[3] तत्परां,
त्रैलोक्यत्रिदशत्रिकोटिसहितां सन्ध्यां त्रयीं तां नुमः ॥४३॥

ओमित्येतत् त्रिमात्रं त्रिभुवनकरणं त्रिस्वरं वह्निरूपं[4],
त्रीणि त्रीणि त्रिपादं त्रिगुणगुणमयं[5] त्रैपुरान्तं त्रिसूक्तम्।
तत्त्वानां पूर्वशक्ति त्रितयगुरुपदं पीठयन्त्रत्रयाढ्यं[6],
तस्मादेतत् त्रिपादं त्रिपदमनुसरं त्राहि मां भो नमस्ते[7] ॥४४॥

स्वस्तिश्रद्धातिमेधा-मधुमतिमधुरः संशयः प्रज्ञकान्ति[8]—
र्विद्या[9] बुद्धिर्बलं श्रीरतनुधनपतिः सौम्यवाक्यानुवृत्तिः।
मेधा-प्रज्ञा-प्रतिष्ठा-मृदुपतिमधुरा[10]ऽऽपूर्णविद्याप्रपूर्णं,
प्राप्तं प्रत्यूषचिन्त्यं प्रणवपरवशात् प्राणिनां नित्यकर्म ॥४५॥

वर्णमालया जपविधानम्—

पञ्चाशद्वर्णमध्ये प्रणवपरयुते[11] मन्त्रमाद्यं नमोऽन्तं,[12]
सर्वं सव्यापसव्यं शतगुणमभितो वर्गमष्टोत्तरं ते।
एवं नित्यं प्रजप्तं त्रिभुवनसहितं तुर्यमन्त्रं[13] त्रिपादं,
ज्ञानं[14] विज्ञानगम्यं गगनसुसदृशं[15] ध्यायते यः स मुक्तः ॥४६॥

मं०सं०—अ वर्ण से ळ वर्ण तक ५० (लोम) तथा ळ से अ तक ५० (विलोम) तथा

---

१. पूर्वगम्यं, द्विजकुलमुनयः सिद्धविद्याधराद्याः, मनुमहिममहद्बीजराजाधिमूलम्। (ग, घ)।

२. त्रैपुरां (ग-घ)। ३. मात्रात्रयीं ओमित्येकं—त्रैपुरं तां (ग)

४. वह्निबीजं (घ), ५. गुणमयी (घ), ६. पीठत्रयं तान्त्रिकं (अनुरुच्च,) पीठयन्त्रत्रयाढ्यं, ७. ॐ नमस्ते।

८. शंसयं (घ), बलञ्चातुल० वार्तानुकर्त्री। प्रतिष्ठामृतमकरगिरा०(घ), नित्यकामा। (घ)। मधुरा-प्रज्ञा।

९. बलश्रीरतुल० नुवर्ती०, १०. मृदुमधुरगिरा—प्रपूर्णा। (ग)। प्राप्ता प्रत्यूषचिन्त्या प्रणवपरवशा प्राणिनां नित्यकामा।

११. मनुयुते०, १२. नमोऽन्ते०, १३. मन्त्र-त्रि० प्रजानां, (घ), सव्यापसव्ये, १४ वर्णाः, १५. गगनसमपदं।

क च ट त प य श आदि ८ वर्ग इस प्रकार १०८ वर्णों को माला के रूप में जोड़कर जप करने का विधान यहां सूचित है।

वर्णमाला-मन्त्राजप प्रयोगः फलञ्च —

आदिक्षान्तसबिन्दुयुक्तमुदितं मेरुं क्षकारात्मकं[1],
व्यस्ताव्यस्तसमस्तवर्गसहितं पूर्णं शताष्टोत्तरम्।
गायत्रीं जपतां त्रिकालसहितां नित्यं सनैमित्तिका-[2]
मेवं जाप्यफलं शिवेन कथितं सद्भोग[3]मोक्षप्रदम्॥४७॥

मं०सं०—पूर्वोक्त कथन को ही पुनः स्पष्ट किया गया है।

सप्तव्याहृतिसप्ततारविकृतिः सत्यं वरेण्यं धृतिः,
सर्वं तत्सवितुश्च धीमहि महाभर्गस्य देवं भजे[4]।
धाम्नो[5] धामदमादिधारणमहान् धीभत्पदं ध्यायते,
ॐ तत्सर्वमनुप्रपूर्णदशकं पादत्रयं केवलम्॥४८॥

विज्ञानं[6] विलसद्विवेकवचसः प्रज्ञानुसन्धारिणीं,
श्रद्धामेध्ययशः शिरः सुमनसः स्वस्ति श्रियं त्वां सदा।
आयुष्यं धनधान्यसम्पदतुलां देवी-कटाक्षं परं,
तत्काले सकलार्थ-साधनमदान्[7] मुक्तिर्महत्त्वं पदम्॥४९॥

सौम्यं सौभाग्यहेतुं सकलसुखकरं सर्वसौख्यं समस्तं,
सत्यं सद्भोगनित्यं सुखजनसुहृदं सुन्दरं श्रीसमस्तम्।
सौमङ्गल्यं[8] समग्रं सकलशुभकरं स्वस्तिवाचं[9] समस्तं,
सर्वाद्यं[10] सद्विवेकं त्रिपदपदयुगं प्राप्तुमाद्यं समस्तम्॥५०॥

गायत्री-पदपञ्च पञ्चप्रणवद्वन्द्वं त्रिधा सम्पुटं,
सृष्ट्यादि-क्रममन्यजापदशकं देवीत्रयं भूत्रयम्।
मन्त्राणां स्थितिभेदसम्पुटमिदं श्रीमातृकावेष्टनं,
वर्णान्तादिविलोममन्त्र-पठनं संहारसम्मोहनम्॥५१॥

---

१. मेरुक्षकारान्तकं० आदिक्षादि० मेरुक्षमारान्तकं। व्यस्तव्यस्तसमस्तपर्वसहितं पूर्णं०
२. नैमित्तिकं चैतज्जाप्यं नैमिज्जिके, एतज्याप्य०। ३. भोग।
४. धियः। (घ), ५. धीमदधीरधारणमहान् धीनिव्यकं (घ)।
६. विज्ञान० (ग); वचसा (घ), सन्धारणं, मेघ० शित्रः धानासम्पदतुलं। देवी—।
७. साधनकरे मुक्तेर्महत्त्वं। ८. सौमङ्गल्यं (घ)।
९. वाच्यं० १०. सद्वेद्य० ११. प्राप्तमध्यासमस्तम् (ग)।

भूराद्यं भूर्भूवः स्वस्त्रिपदपदयुतं[१] व्यक्षमाद्यन्तयोज्यं,
सृष्टिस्थित्यन्तकार्यक्रमशिखिसकलं[२] सर्वमन्त्रं प्रशस्तम्।
सर्वाङ्गं मातृकाणां मनुमयवपुषं मन्त्रयोगं प्रयुक्तं,
संहारं क्षादिवर्णं वसुशतगणनं मन्त्रराजं नमामि ॥५२॥

आधारादि-षडस्त्रतुर्यरसकं[३] दिक्सङ्ख्यया द्वादश,
तत्कण्ठोपरि षोडशं रविशशी संयोगमाज्ञाद्वयम्।
तत्पीयूषपथं त्रिनाडिसहितं षष्टयैकवर्णात्मकं,
सम्यग्ज्ञानसहस्रपत्र-सहितं तुर्यादिपादं भजे ॥५३॥

आद्यां च यां मनुमयीं जननीं स्मरन्ती-
त्येवं शिवस्य च वपुः प्रतिपालयन्ति।
सृष्टि-स्थिति-क्षयकरीं जगतां त्रयाणां,
शुद्धां गिरं विमृशथाम्यहमादिमातः ॥५४॥

प्राणापानसमानबिन्दुसहितं बन्धत्रयं संयुतं,
सप्तव्याहृति-बिन्दुसम्पुटपरं वेदादिपादत्रयम्।
गायत्रीं शिरसा त्रिनाडिसहितामीडे द्वये द्वे परे,
शुद्धे केवलकुम्भकं प्रतिदिनं ध्यायामि तत्त्वं पदम् ॥५५॥

अघोष-निर्घोष-गमागमस्थं, नाडीद्वयं रेचकपूरकं च।
कुम्भोपमं पूर्णघटप्रकारमेवं विधिः स्यात् प्रणवस्य साध्यः ॥५६॥

मानस-पूजा-सूचनम् —

पृथ्वी गन्धोऽर्च्चनायां[४] नभसि कुसुमता वायुधूपप्रकर्षो[५],
वह्निर्दीपप्रकाशो जलममृतमयं नित्यसङ्कल्पपूजा।
एतत्सर्वं निवेद्यं सुखवति हृदये[६] सर्वदा दम्पतीनां,
त्वं सर्वज्ञा शिवं मे कुरु तव ममता भक्तवर्गे प्रसिद्धा[७] ॥५७॥

---

१. प्रणवपद०। मन्त्रानत्र (मन्त्रात्म) शास्त्र। सर्वानां मातृकाणं। (घ) सर्वमन्त्रान्त-मस्त्रम्। २. शिखिशकलं (घ) भजामि ॥५२॥

३. आधारादिचक्रः-सहस्रकयुतं।

४. गन्धार्चनं वा (ग.) ५. धूपं तथैव गन्धानुलेपो (ख) ६. सुखवसतिहृदि। ७. तव मम जननी भक्तवृन्दे न ज्ञेया(ग)।

फलश्रुति-पुष्पिका —

[1]वैश्वामित्रमुदाहृतं हितकरं सवर्थिसिद्धिप्रदं,
स्तोत्राणां परमं प्रभातसमये पारायणं नित्यशः ।
वेदानां विधिवादमन्त्रसफलं[2] सिद्धिप्रदं सम्पदां[3],
सम्प्राप्नोत्यपरत्र सर्वसुखदं त्वायुष्यमारोग्यताम् ॥५८ ।

चतुःषष्टि-जपं सङ्ख्या-वेदशाखा-पुरःसरम् ।
स्वभेदं च विजानाति गायत्री सफला भवेत् ॥५९॥

मन्त्रसङ्ख्या — समाम्नाय-गुरुरूप-स्वभावकम् ।
नन्दनार्थं स्वयं वेत्ति गायत्री सफला भवेत् ॥६०॥

तान्त्रिकं योगिनीचक्रं हंसोच्चारगणान्वितम् ।
मृत्युलाङ्गूलसूक्तानि वेत्ति साक्षाद् हरिः स्वयम् ॥६१॥

नन्दशक्तिः पादुकाख्या गुरुदीक्षा तथैव च ।
देवीसूक्तं शृङ्खला च, गायत्री सफला भवेत् ॥६२॥

पञ्चाङ्गोपासनेनैव मन्त्रजाप्यं सुखं व्रजेत् ।
पञ्चयज्ञसमायुक्तं गायत्री सफला भवेत् ॥६३॥

बाह्य-विधान-सूचना —

दशधा मातृकान्यासं कलान्यासं ततः परम् ।
मूर्ति-मातृकया न्यासं प्रपञ्च-विजयं तथा ॥६४॥

पद-पादाक्षराबीजं षट्कुक्षिभिः समन्त्रकम्[4] ।
द्वादशलक्षणैर्युक्तं[5] गायत्री सफला भवेत् ॥६५॥

कराङ्ग-शोधनं शुद्धिर्वर्ण-न्यास-विधानतः ।
छन्दः षोडश यो वेत्ति सोऽपि ब्रह्माग्निविग्रहः ॥६६॥

---

१. विश्वामित्रसमुद्धृतं —

२. मन्त्रपरमं । ३. शाश्वतं, स प्राप्नोति परत्र सर्वसुखदं त्वायुष्यमारोग्यताम् ॥५८॥

४. षट्कुक्षी च समं त्रिकम् । (घ) ५. छन्दसो लक्षणैर्युक्तं० (घ) ।

शक्तिगन्धाष्टकं[१] प्राज्ञो लेखिनीं मण्डलक्रियाम्।
द्रव्याधारं पात्रशुद्धिं ज्ञात्वा भेदैः प्रमुच्यते[२] ॥६७॥

इति श्रीमद्-ब्रह्मतान्त्रिके विश्वामित्र-कृतः
डॉ० रुद्रदेवत्रिपाठि सङ्कलित-मन्त्रसङ्केतसमन्वितः
सम्पूर्णः ।

"श्रीगायत्री-स्तवराजः"

卐

कृष्णानन्द-कृपाप्राप्तो विद्यारण्येन बोधितः।
'रुद्रदेवः' ससङ्केतं स्तवराजमिदं बुधाः ॥१॥
यथामति सुसम्पाद्य गायत्री-चरणाब्जयोः।
समार्पयत् स सद्भक्त्या तेन माता प्रसीदतु ॥२॥

卐

१. शक्तिगन्धाष्टकं यथा —

चन्दनागरुकर्पूर-कुङ्कुमं रोचनं तथा।
शिलारसो जटामांसी हरिद्रा चैकवृद्धितः ॥

२. यह स्तवराज 'सर्वार्थसिद्धि-कल्प' हस्तलिखित ग्रन्थ में भी संगृहीत है। इसी ग्रन्थ में पैप्पलादशाखा के अनुसार 'षडघ्र्यप्रयोग' में उपयोगी अस्त्रों का विधान भी है। इसमें 'गायत्री परमाकला' कहकर कुछ ऋचाओं तथा वर्गों के प्रयोग भी दिखाये हैं।

गायत्री-मन्त्र-साधना-विमर्शः

—डा० रुद्रदेवत्रिपाठी

"उप त्वाऽग्ने दिवे दिवे दोषावस्तर्धिया वयम्। नमो भरन्त एमसि ॥
(ऋ० १।१।७)

प्रस्तुताया ऋचः —'हे अग्ने ! मनुष्याणामग्रणीर्जगद्गुरो परमात्मन् ! अहरहः प्रतिदिनम् रात्रावहनि रात्रिन्दिवयोः सन्धौ सायम्प्रातः, मनसा त्वदेकचेतसा नमस्कारं सम्पादयन्तो वयं त्वत्पुत्राः सर्वे मनुष्यास्त्वामन्तरात्मानं भगवन्तं उपास्महे, गुरुमन्त्रेण गायत्र्योपासीमही"ति —भाष्यार्थ-माध्यमेन ज्ञायते यद् वेदाः सर्वप्रथमं गायत्र्याः = गायत्रीमन्त्रस्योपासन-साधनत्वं समकेतयन्निति। अथ च गायत्री 'वेदमाता'पदेनाथर्ववेदे किञ्चिद् विशिष्यैवं वर्णितास्ति —

स्तुता मया वरदा वेदमाता प्रचोदयन्तां पावमानी द्विजानाम्।
आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्तिं द्रविणं ब्रह्मवर्चसं,
मह्यं दत्त्वा व्रजत ब्रह्मलोकम् ॥ (१९।७१।१)

अत्र स्वानुष्ठित-गायत्रीमन्त्रजपेन मन्त्रद्रष्टा ऋषिर्द्विजानामायुरादीष्टफलमाशास्य तन्मध्यवर्तिनः स्वस्यापि प्रार्थनीयं फलं सिद्धवदनुवदति। किञ्च —

तेजोऽसि शुक्रमस्यमृतमसि, धामनामासि।
प्रियं देवानामनाधृष्टं देवयजनमसि॥ (यजु० अ० १२, मं० ३१)

इति मन्त्रेण गायत्र्या आवाहनं विधीयते तथाऽस्या उपस्थानम् —

गायत्र्यस्येकपदी द्विपदी त्रिपदी चतुष्पद्यपदसि नहि पद्यसे।
नमस्ते तुरीयाय दर्शताय पदाय परोरजसे सावदो मा प्रापत्॥[1]

इति मन्त्रेण क्रियते। इयमेव च गायत्री कालभेदेन त्रिधा व्यवाह्रियत। यथा —

गायत्री नाम पूर्वाह्णे सावित्री मध्यमे दिने।
सरस्वती च सायाह्ने सैव सन्ध्या त्रिधा स्मृता॥

१- अयं वाजसनेयकशतपथब्राह्मणोक्तो गायत्र्युपस्थानमन्त्रः। बृ० ५।१४।७।

क्रियाभेदेनाऽप्यस्य त्रैविध्यं - तत्प्रयोक्तृप्राणत्राणाद् **गायत्री** सवितृद्योतनाज्जगतः प्रसवितृत्वाच्च सैव सावित्री वाक्स्वरूपत्वाच्च **सरस्वती**ति ।

एवं रूपेण विभावितेयं 'गायत्री' किं छन्दोरूपैव ? किं वा मन्त्ररूपा ? किं वा गायत्री-मन्त्रोक्ता सवितृरूपा ? प्रत्युत शक्तिरूपेति प्रश्नाः प्रायशः साधकानां मनसि समुत्पद्यन्ते । तत्राहि —

'किमिदं छन्दः ?' इति प्रश्ने छन्दः किल त्रिविधं भवति १. लक्ष्यापेक्षम् २. लक्षण्यापेक्षं तथा ३. लक्षणापेक्षम् । यथा-" १. अग्निमीडे०, २. गायत्र्युष्णिगनुष्टुब्बृहतीपंक्तित्रिष्टुब्जगत्याद्याः सप्तैव जातयः, ३. यदक्षरं परिमाणं तच्छन्दः, मात्रान्तरसङ्ख्या नियता वाक् छन्द इति च स्पष्टम् । तत्रापि छन्दसामुच्चावचवादा अनेके सन्ति । यथा—"प्राणमात्रा छन्दः । वाचिकप्राणः स्वरस्तन्मात्रा वाचिकच्छन्दः । भौतिकप्राणो वैश्वानरस्तन्मात्रा भौतिकच्छन्दः । वागेव छन्दः शब्दवाच्या न । अतोऽवच्छेदश्छन्द इत्येव राद्धान्तः, स च मानेन प्रतिष्ठया वा तुलितकेन वा क्रियमाणो वस्तुस्वरूपमर्यादाबन्धः । अत एवाच्छादकस्य छन्दस्त्वम् । इतरसम्बन्धापवारकत्वमाच्छादकत्वम् । 'तस्माद् यज्ञात् सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे । छन्दांसि जज्ञिरे' इति स्वरूप-संवरकत्वमेव छन्द इत्यपि । अथवा — मा-प्रमा-प्रतिमात्मकभेदत्रयभिन्नः प्राणावच्छेदोऽवच्छिन्नप्राण एव वा छन्दः । प्राणश्छन्दःपरिभाषायामक्षरशब्देनाख्यायते तेषां चाक्षरप्राणानां प्रातिस्विकोऽवच्छेदो मात्राशब्देन वाचिकच्छन्द आर्थिकच्छन्द इति ज्ञायते ।

अनया दृष्ट्या गायत्रीच्छन्दो वाचिकार्थिकच्छन्दसोरग्निरूपत्वं मन्यते । अष्टावग्निरूपाणि । अत एव-'**अग्निर्गायत्र**' इत्युच्यते । अष्टाक्षरा गायत्री । तस्मादाहुर्गायत्रोऽग्निरिति । तेजो ब्रह्मवर्चसं गायत्रम् । ब्रह्म गायत्रम् । ब्राह्मणो गायत्रः । '**गायतो मुखादपतद्**' इति **गायत्री**, **सा** च त्रिपदा । गायत्रीमेव त्रिपदां सतीं चतुर्थेन पादेनानुष्टोभति'-इत्यनुष्टुभश्च निर्वचनम् ।

गायत्रीछन्दस्त्विदं '**दैव्येकाक्षरा गायत्री**' (उपनिदानसूत्रे) प्रणवस्य च्छन्दोद्योतिका । अष्टाक्षरात्मकत्रिपदा सती चतुर्विंशत्यक्षरा प्रसिद्धा । कैश्चिच्च **मा** ४ **प्रमा** ८ **प्रतिमा** १२, **उपमा** १६ **समा** २० चेति पञ्चापि गायत्रीति निगद्यन्ते । यजुषां गायत्री षडक्षरा । ऋचां त्रिःषट् । साम्नां द्वादशाक्षरा । आर्ची अष्टादशाक्षरा । ब्राह्मी षट्त्रिंशदक्षरा (उव्वटभाष्ये) इत्थमेव 'वर्धमाना गायत्री पिपीलिकामध्या गायत्री' चेत्यादयो भेदाश्छन्दःशास्त्रादिषु प्रदर्शिताः सन्ति ।

एवं छन्दःसु बहुषु सत्स्वपि गायत्रीच्छन्दस एवं मुख्यत्वं प्रतिपादयन्ती भगवती श्रुतिः —

गायत्री वा इदं सर्वं भूतं यदिदं किञ्च वाग् वै गायत्री ।
वाग् वा इदं सर्वं भूतं गायन्ति त्रायते च ।। (छान्दोग्ये० ३।१२।१) इति ।

भगवत्पादाः श्रीशङ्कराचार्याश्चास्याः श्रुतेर्भाष्ये गायत्र्या महत्त्वं प्रतिपादयन्तश्चेत्थं व्याख्यातवन्तः —

"गायत्रीद्वारेण चोच्यते ब्रह्म । ब्रह्मणः सर्वविशेषरहितस्य नेतिनेतीत्यादि विशेषप्रतिषेधगम्यस्य दुर्बोधत्वात् । सत्स्वनेकेषु छन्दःसु गायत्र्या एव ब्रह्मज्ञानद्वारतयोपादानं प्राधान्यात् ।

सोमाहरणादितरच्छन्दोऽक्षराहरणेनेतरच्छन्दोव्याप्त्या च सर्वसवनव्यापकत्वाच्च यज्ञे प्राधान्यं गायत्र्याः। गायत्रीसारत्वाच्च ब्राह्मणस्य मातरमिव हित्वा गुरुतरां गायत्रीं ततोऽन्यद् गुरुतरं न प्रतिपद्यते, यथोक्तं — ब्रह्मापीति। तस्यामत्यन्तगौरवस्य प्रसिद्धत्वात्। अतो गायत्रीमुखेनैव ब्रह्मोच्यत इति।"

बृहदारण्यकश्रुते (५।१४।१) भाष्येऽपि तं इत्थं निगदन्ति —

"गायत्र्युपाधिविशिष्टस्य (ब्रह्मणः) उपासनं वक्तव्यं···**सर्वच्छन्दसां हि गायत्रीछन्दः प्रधानभूतम्···ः द्विजोत्तमस्य द्वितीयं जन्म गायत्रीनिमित्तं तस्मात् प्रधाना गायत्री**···**गायत्र्या हि यः सृष्टो द्विजोत्तमो निरङ्कुश एवोत्तमपुरुषार्थसाधनेऽधिक्रियते। अतस्तन्मूलः पुरुषार्थ-सम्बन्धः।"**

किञ्च '**बृहदारण्यकोपनिषद्भाष्ये**'ऽपि प्रतिपादितवन्त आचार्याः —

"**सैषा गायत्री प्राणः। अतो गायत्र्यां जगत्प्रतिष्ठितम्। यस्मिन् प्राणे सर्वे देवा एकं भवन्ति। सर्वे वेदाः कर्माणि तत्फलं च, सैव गायत्री प्राणरूपा सती जगत आत्मा, सा हैष गयाँस्तत्रे=त्रातवती, के पुनर्गयाः? प्राणाः=वागादयो वै गयाः। गयत्राणाद् गायत्रीति प्रथिता"। इति। (५।१४।४)**

एवमेवान्यत्र गायत्र्या व्याख्यानानि सुबहूनि प्राप्यन्ते, तानि विस्तरभियाऽत्र न प्रकाश्यन्ते परं योगशास्त्रेण प्रतिपादितानां नाडीनामपि गायत्रीमन्त्राक्षरैर्महान् सम्बन्धोऽस्तीति विषये किमप्यत्र प्रतिपाद्यते।

आगमिको गायत्री-विमर्शः

आगमेषु गायत्री-मन्त्रस्य विमर्शो द्विधा प्राप्यते। तत्र प्रथमे विमर्शे स्वतन्त्ररूपेण '**गायत्री**'-**तन्त्र**'मिति नाम्ना प्रणीतं तन्त्रं श्रीमच्छङ्कराचार्यचरणैर्व्याख्यातं तथा '**गायत्री-भाष्य**'-नाम्ना बहवो ग्रन्था उपलभ्यन्ते, येषु **शङ्कराचार्य-सायणाचार्य-भास्कर-भट्ट-महीधर-वल्लभाचार्य-विट्ठलनाथ-महाप्रभुरूपगोस्वामि**-प्रभृतीनामाचार्याणां गायत्री-मन्त्रार्थपूर्वकं स्व-स्वसम्प्रदायानुसारिण्यो जपप्रक्रिया वर्णिताः सन्ति। पुराणेषु दर्शिता जपपद्धतयोऽपि तन्त्राण्ये-वानुकुर्वन्ति। नानाविधेषु पटलेषु गायत्रीमन्त्रमधिकृत्य जपादिव्यवस्थाः प्रकटिताः सन्ति। यथा हि—'**तारैकजटापूजा-पटल**'स्यान्ते 'गायत्री-रहस्य'-प्रकरणे गायत्रीमन्त्रविषये प्रोक्त-मस्ति —

गायत्र्या पुटितं मन्त्रमिष्टमन्त्रं जपेच्छतम्।
इष्टमन्त्रेण पुटितां गायत्रीं प्रजपेच्छतम्॥१॥

एतज्जपं महेशानि ! आधाराधेयमुच्यते।
विनाधारं महेशानि ! आधेयं न विना तथा॥२॥

आधारः सिद्धयते भद्रे ! आधेयं च न सिद्धयति।
सर्वेषु विष्णुमन्त्रेषु शैवशाक्तेषु सुन्दरि॥३॥

सौरे गाणपतौ भद्रे शस्यते वरवर्णिनि ।
एवमाधाराधेयं च यः करोति द्विजातिकः ॥४॥
अङ्कुरो जायते भद्रे लक्षजापान्न संशयः ।
न स जीवात्मनोर्भिन्नो गायत्री ब्रह्मरूपिणी ॥५॥
गायत्र्या नहि भिन्नः स्याज्जीवात्मा तत्स्वरूपिणी ।
सर्वदैवोभयोरैक्यं नारिकेले यथोदकम ॥६॥
चन्द्रसूर्योपरागे च जप्त्वा ब्रह्ममयो भवेत् ।
मन्त्रस्य परमेशानि न च होमादिकं दशा ॥७॥
कृते होमादिके भद्रे तज्जप्ते विफले तथा ।
जपमात्रे महेशानि दशांशं केन जायते ॥८॥
गायत्र्या रहितो यस्तु जपपूजादिका वृथा ।
हविरारोपमात्रेण यथा वह्निः प्रदीप्यते ॥९॥
आधाराधेय-सम्बन्धान्मन्त्रः प्रज्वलितस्तथा ।
विनाधाराधेयं च प्रजपेद् यदि मूढधीः ॥१०॥
शतकोटि-जपेनापि तस्य विद्या न सिद्धचति । इति ।

श्रीविश्वामित्र-प्रोक्ते **'गायत्री-स्तवराजे'** गायत्रीमन्त्रस्य सम्पुट-विदर्भ-बीज-योजन-मन्त्रान्तरगर्भानुलोम-विलोम-नानाविध-प्रणवादि-विद्यामन्त्रसंयोजनप्रकाराणां ये ये निर्देशा विद्यन्ते ते सर्वेऽप्यागमप्रोक्ता एव । कालविशेषेण जप्यानां गायत्रीमन्त्राणां प्रक्रियास्तत्तद्-विद्यायुक्त-मन्त्राणां प्रयोगाश्चागमेष्वेव लभ्यन्ते । **'मन्त्रमहार्णव-पुरश्चर्यार्णव-श्रीविद्यार्णव-मन्त्रमहोदधि'**-प्रभृति-तन्त्रग्रन्थेष्वपि गायत्रीमन्त्रस्य विशिष्टाश्चर्चास्तथा चान्यान्यानि 'गायत्री-विधानानि' प्रदर्शितानि विद्यन्ते । एवमेव पञ्चतारागायत्री-साम्राज्यबीजयुक्ता-सव्यापसव्य-गायत्री-सदृशा अनेके मन्त्रा अपि तत्तत्प्रयोगसमन्वितास्तन्त्रेषु विद्यन्ते ।

अत्र तन्त्र-योगयोः समष्ट्या या गायत्री-मन्त्र-साधना क्रियते तद्विषये परमपूज्याद्य-शङ्कराचार्य-प्रदर्शितायाः पद्धत्याः संक्षेपः प्रस्तूयते सोऽप्यागम-सम्मत एवेति ।

'यतिदण्डैश्वर्ये' गायत्री-निरूपणम्

आद्यशङ्कराचार्यचरणानामुपलब्धेषु ग्रन्थेषु **'यतिदण्डैश्वर्यविधानं'** नाम ग्रन्थरत्नमद्या-वध्यज्ञातमेवावर्तत । पूज्यपादाः श्रीविद्यारण्य (मूर्खारण्यापरनामधेयाः) यतयो नेपालदेशादिमं ग्रन्थं समुद्धृत्यानीतवन्तः । नैकैरध्यायैः समन्वितो बृहदाकारकोऽयं ग्रन्थः श्रीमदाचार्यै-र्ज्योतिर्मठे प्रारब्धः कारणवशाच्च नेपालान् समागत्य तत्रैव निवसद्भिरयं समापितः ।

१- अयं ग्रन्थः साम्प्रतं मुद्रितः । अस्य सम्पादनं हिन्दीव्याख्यानं चास्य निबन्धस्य लेखकेन (मया रुद्रदेवेन) विहितमस्तीति ।

अस्मिन् यतेर्दण्डस्य वैज्ञानिकेन विवेचनेन सह शारीर-शास्त्रस्य तथा साधनासम्बद्धानां रहस्यानामपि विस्तरेण विचारो विहितः। अस्मिन् ग्रन्थे श्रीचक्रार्चना-प्रसङ्गेनावरणार्चनान्याविर्भावयद्भिस्तैरेकादशद्वादशावरणयोर्गायत्रीसाधनाया एकं दुर्लभं विधानमपि निरूपितमस्ति । तत्र हि —

गायत्रीमन्त्रस्य वर्णानधिकृत्य या देवता वर्णितास्तासां सङ्ख्या चतुर्विंशतिसङ्ख्यात्मिका नास्ति प्रत्युत द्वात्रिंशन्मयी विद्यते । कारणं तत्र **'नेत्रतन्त्रो'**क्तोऽयं पद्यांशो विद्यते —

"अक्षराक्षर-संयुक्तो यः स मन्त्रो नैव सिद्धयति ।"

एतदनुसारं संयुक्ताक्षरवतो मन्त्रस्य जपात् सिद्धिर्न भवतीति निश्चित्यैवाचार्यपादैर्गायत्रीवर्णानां गणना एकत्रिंशदक्षरैर्विहिताऽस्ति । सहैव गायत्रीवर्णानधिकृत्य ते शरीरस्थानां नाडीनामप्यनुसन्धानं चक्रुः । प्रत्येकं नाड्या नाम्नि देवीशक्तेर्नाम निविष्टं विद्यते। मानवशरीरे वर्तमाना नाड्यस्तासामेव शक्तीनां नामभिः स्थिताः सन्ति। आचार्यपादा गायत्रीमन्त्रवर्णाधारेण वर्णितानां तासां देवीनां नाम्नां पाठमात्रेण गायत्रीमन्त्रजप-फलं भवतीति दर्शितवन्तः । किञ्चैतैः साकं तुरीयपादस्य[1] नववर्णानां शक्तयोऽपि दर्शिताः । एवमाहृत्य चत्वारिंशन्नाम्नां जपादौ जपान्ते च पाठाच्छरीरस्थं नाडीतन्त्रं प्रदीप्तं सत् साधकस्य लक्ष्यसाधने सहायकं भवति ।

मानवशरीररचना गायत्री च

गायत्र्या वर्णात्मक-स्वरूपाधारेणैव मानव-शरीरस्य रचना संवृत्ताऽस्ति । शरीरस्थो मेरुदण्डो गायत्र्या अक्षरात्मकं तन्त्रं विद्यते । यथा गायत्रीमन्त्रे चतुर्विंशतिसङ्ख्यकान्यक्षराणि विद्यन्ते तथैव मेरुदण्डेऽपि तावत्य एव कशेरुकाः सन्ति। तासां कशेरुकाणां रचना गायत्र्या एकैकेन वर्णेन वर्णानुरूपेण वा सम्पन्नाऽस्ति। एतासु प्राणशक्तीनां प्रवाहानुरूपमेव वर्णानां मुखानि विभिन्नानक्षांशान् प्रति वलितानि विद्यन्ते । अक्षराकृतौ परिणमयितुं तानि वर्णमुखानि तावत एवाक्षांशान् यावद् वलयितव्यानि भवन्ति । सरलीभावात् तानि तेषां तेषामक्षराणां स्वरूपेषु परिणमन्ते। मस्तिष्के चलन्त्यो नाड्यो मेरुदण्डमेवाधारीकृत्य पादाङ्गुष्ठं यावदात्मीयानि कार्याणि सम्पादयन्ति। मेरुदण्ड एव समेषां चक्राणां सर्वेषां नाडीचक्राणां शक्तिकेन्द्राणाञ्च वर्तत आवासः। गायत्र्याः शरीररचनायाश्च सम्बन्ध इयान् घनिष्ठो विद्यते यो हि शब्दानां माध्यमेन प्रकटयितुं न भवत्यलम् । निरन्तरं साधनायाः प्रवृत्त्या यदा रहस्यानां प्रकटीभावस्याधारभूः पुष्टा भवितुं प्रवर्तते तदा तेषां रहस्यानामनुभवाः स्वयमेव प्रारभ्यन्ते शनैः शनैश्च गायत्र्याः साधकस्य च स्थितिरेकाकारा भवितुं प्रवर्तते। शरीरस्य मन्त्रमय्यां स्थितौ सत्यां शरीरं दिव्यत्वं धारयति दिव्यत्वस्थितौ च विश्वस्य विश्वस्य किमपीदृशं रहस्यं नावशिष्यते यन्न प्रकटीभवेत्। ब्रह्माण्डस्य पिण्डस्य च तादात्म्यं तदैव स्थाप्यते। ईदृशाय शरीराय नावशिष्यते किमपि दुर्लभम् ।

१- अयं पादोऽथर्ववेदादुद्धृतः **'परो रजसे सावदोम्'** इति विद्यते ।

गायत्री शरीरस्थं नाडीचक्रञ्च

मानवशरीरस्य स्थूला सूक्ष्मा चोभयविधा सञ्चालन-प्रक्रिया नाडीसंस्थानेनैव भवति। शरीरमाधारीकृत्य नाडीसमूहोऽयं पिण्डरूपेणात्मन एकं पृथग् ब्रह्माण्डं संस्थाप्य राजते। पिण्डस्यायं ब्रह्माण्डः प्राणशक्तेराधारेणैव विराजा ब्रह्माण्डेनात्मनः सम्बन्धं स्थापयित्वा स्थितः। मानवशरीरस्य समस्ते पिण्डे सार्धत्रिलक्षमितानां नाडीनामस्त्यधिष्ठानम्। तास्वपि द्वासप्ततिसहस्रमिता नाड्यो मुख्याः सन्ति। या अन्याभिः सहयोगिनीभिर्नाडिकाभिः सम्बद्ध्यन्ते। तास्वपि द्वासप्ततिसङ्ख्यकाः प्रमुखा या हि मानवशरीरस्य समस्तानां क्रिया-कलापानां मुख्याधाररूपाः।

इत्थं शरीरस्येमासु द्वासप्ततिनाडिकासु नियन्त्रण-संस्थापनस्य तात्पर्यमस्ति सृष्टेः कस्मिन्नपि कार्ये स्वेच्छाशक्त्या परिवर्तनसामर्थ्यप्राप्तिः। इदं नियन्त्रणं तदैव भवितुमर्हति यदा—अशुद्धस्य रक्तस्य शोधनं शुद्धस्य रक्तस्य शरीरे प्रसारणं प्राणवायुना प्राणतत्त्वस्य ग्रहणं प्राणस्य पञ्च प्राणेषु तथा पञ्चोपप्राणेषु विभाजनं विचारेच्छा-क्रिया-चिन्तन-मननानि च भवेयुः। अस्तीदं सर्वं प्राणस्वरूपाया गायत्र्या अधीनम्।

मानव-मस्तिष्कं वाम-दक्षिणयोर्द्वयोर्गोलार्धयोर्विभक्तं विद्यते। प्रत्येकं गोलार्धे षोडश-षोडश नाड्यः सन्ति या आरोहावरोहक्रमेण द्वात्रिंशद्-द्वात्रिंशद् रूपा भवन्ति। द्वयोरपि गोलार्ध-योरिमा नाड्यः शरीरेऽधोभागं प्रति गच्छन्त्यो यत्र यावतां दलानां रूपेण चक्राणि निर्मान्ति तत्र तावत्य एव न्यूना भवन्ति किञ्च दिशां कोणा भवन्ति तत्र दलानामनुपातेन तावत्य एव नाडिकास्तासु सम्मिलिता जायन्ते। इत्थं द्वयोरपि भागयोर्नाडिका अग्रे ललनाचक्रं सम्प्राप्य सर्वप्रथमं चतुः-षष्टिदलात्मकं चक्रं निर्मान्ति। ललनाचक्राच्चाग्रे वर्धमानास्ता एव विशुद्ध-चक्रे षोडशदलात्मकं पद्मं रचयन्ति। तत्र तासां सङ्ख्यायां षोडशनाडीनां नैयून्यमायाति। ततोऽग्रे वायव्यकोणरूपाच्चक्राच्चतुर्दश नाडिका उपेत्य युञ्जन्ति। ततः परमनाहतपद्मे द्वादश नाडिका न्यूना भवन्ति नैर्ऋत्यकोणादेकादशनाड्य आगत्य मिलन्ति। मणिपूरकनिर्माणे दश नाडिका न्यूना भवन्ति तदाऽऽग्नेयकोणादागत्याष्टौ नाड्यो भूयोपि सङ्गताः। ततः परं स्वाधिष्ठानचक्रनिर्मितये षण्णाडिका न्यूना भवन्ति तदैशानकोणचक्रादुपेत्यैकादशनाड्यः पुनः संयुताः जायन्ते। एवमेत्र मूलाधारचक्रस्य निर्माणे यत्र चतस्रो नाड्यो न्यूनतां यान्ति तदा-ऽऽज्ञाचक्रनिर्माणे द्वे नाड्यौ न्यूने भवतः। अग्रे मूलाधारादप्यधो विषुवचक्रस्याष्टौ नाड्यस्तथा-ऽकुलचक्रस्य षण्णाड्यः पुनः सङ्गच्छन्ति, एवं सर्वाः सम्भूय द्वासप्ततिसङ्ख्यकाः सम्पद्यन्ते।[1] क्रममिमं परिज्ञातुं तालिका-फलकमिदं द्रष्टव्यम् —

१- अन्यत्र कथितमस्ति यत् कन्दमूलादेव सर्वा इमा नाड्य उत्पद्यन्ते -

गुदस्तु द्व्यङ्गुलादूर्ध्वं मेढ्रात् तु द्व्यङ्गुलादधः।
चतुरङ्गुलविस्तारं कन्दमूलं खगाण्डवत्॥
नाड्यस्तस्मात् समुत्पन्नाः सहस्राणां द्विसप्ततिः। इति॥

मस्तिष्कात् प्रारभमाणानां नाडीनां सञ्चारक्रमः

चक्रनामानि	दलानां सङ्ख्या	चक्रेषु नाडीनां प्रभावः	नाडीनां योगः
ललनाचक्रेषु	६४	पूर्णा सङ्ख्या	६४
विशुद्धचक्रे (उत्तरे)	१६	न्यूना जाताः	४८
वायव्यकोणे	१४	संयुताः	६२
अनाहतचक्रे (पश्चिमे)	१२	न्यूना जाताः	५०
नैर्ऋत्यकोणे	११	संयुताः	६१
मणिपूरचक्रे (दक्षिणे)	१०	न्यूना जाताः	५१
आग्नेयकोणे	८	संयुताः	५९
स्वाधिष्ठानचक्रे (पूर्वे)	६	न्यूना जाताः	५३
ईशानकोणे	११	संयुताः	६४
मूलाधारचक्रे	४	न्यूना जाताः	६०
आज्ञाचक्रे	२	न्यूना जाताः	५८
विषुवचक्रे	८	संयुताः	६६
अकुलचक्रे	६	संयुताः	७२

एता द्वासप्तति-नाडिका एवाग्रे परःसहस्राणां नाडिकानां स्वरूपेण विकसन्ति ।

मस्तिष्कस्य वाम-दक्षिणभागाभ्यां निःसृत्य सञ्चरणशीला एता नाडिका द्वात्रिंशद्-द्वात्रिंशद् रूपेणैकस्य प्रवाहस्य रूपं सम्प्राप्याग्रे वर्धन्ते । ललनाचक्रं यावद् गत्वा वामा नाड्यो वामपक्षाद् दक्षिणा नाड्यश्च दक्षिणपक्षादावर्तं रचयन्त्यश्चतुःषष्टिदलात्मकस्य पद्मस्य 'ललना-चक्र'स्य निर्माणं कुर्वन्ति । पद्मनिर्माणोत्तरं द्वयोरपि पक्षयोर्नाड्यः परस्परं युञ्जन्ति । एवं पद्माय पूर्णत्वप्रदानानन्तरं यत्र पूर्वोक्ता नाड्यो युज्यन्ते तत एवैकैका नाडी भिन्नभिन्नरूपेणोत्पन्ना सती चतुःषष्टिनाडीनां रूपेणाग्रे वर्धन्ते । अग्रे विशुद्धचक्रमागत्य यत्र षोडशदलानां पद्मं भवति तत इमा अष्टौ वामपक्षतोऽष्टौ च दक्षिणपक्षतः पद्मं निर्माय समाप्नुवन्ति । पुनर्विशुद्धा-नाहतचक्रयोर्मध्ये निर्मितिमादधानं वायव्यपद्मं निर्मातुमध ऊर्ध्वचक्राभ्यां विशुद्धादधो यान्त्योऽष्टौ तथाऽनाहतादूर्ध्वं यान्त्यः षट् प्रचलिष्यन्ति यतो मध्ये चतुर्दशदलानामधोमुखं वायव्यचक्रं सम्पत्स्यते । अधोमुखचक्रनिर्माणानन्तरं चतुर्दश नाड्यः पुनः प्रवाहे मिलित्वा तावतीनामेव नाडीनां वृद्धिं कुर्वन्ति ।

इत्थमुपरि दर्शिते फलके न्यूनता-संयुतिमतीनां नाडिकानामयमेव क्रमोऽस्ति यो हि परस्तादन्तं तावत् प्रचलन् तिष्ठति ।

मस्तिष्काच्चलन्तीनामेतासां नाडीनां सञ्चालनक्षेत्रं मेरुदण्डमाध्यमेन हस्तपादाङ्गुष्ठानि यावद् विद्यते । तासु कियत्यश्चिदेतादृश्योऽपि नाड्यः सन्ति याः सहजतया प्रकृतिधर्म-रूपेण स्वीयानि शारीरिककार्याणि साधयन्ति । अनेका ईदृश्योऽपि नाड्यो विद्यन्ते या अति-सूक्ष्माः सन्ति । तादृश्य एव सूक्ष्मा नाड्यः शक्तीनां स्रोतांसि वर्तन्ते या हि मानवशरीरे

सुप्तास्तिष्ठन्ति। तासु यदि प्राणप्रवाहः प्रवेष्टुं शक्येत तर्हि ता विकासं प्राप्नुवन्ति सति च विकासे स्वासु सुप्ताः शक्तीरुद्बोध्याद्भुतान्यलौकिकक्षमतावन्ति कार्याणि सम्पादयितुं चेष्टन्ते। तासु **सूक्ष्मनाडिकासु प्राणानां प्रवाहप्रवेशनस्यैकमात्रं साधनं गायत्र्युपासनमेव वर्तते।** साधनां कुर्वतः साधकस्य प्राणशक्तौ यथा यथा नियन्त्रणं भवितुं प्रारभ्यते, तदनुरूपमेव ता नाड्योऽपि प्राणशक्तिं प्राप्य चैतन्या भवितुं प्रारभन्ते। साधनाकाले तस्याभासः स्पष्टं भवति। नाडीषु नियन्त्रणप्राप्त्यनन्तरं कस्मा अपि कार्यायाभीष्टा नाडी चैतन्या कर्तुं शक्यते तथा तया कार्यं सम्पादयितुं शक्यते। कार्यसम्पादनानन्तरं नाडी स्वस्यां शान्तमुद्रायां तिष्ठति। नाडीचैतन्ये नियन्त्रणाप्राप्तेः परं नाड्यो वशवर्तिन्यो भवन्ति, एकवारं चैतन्यं लब्ध्वा पुनः सुप्ता अपि न भवन्ति किन्तु कार्यपूर्त्यनन्तरं शान्तिमवलम्बन्ते। ता नाड्य इयत्यः सूक्ष्माः सन्ति यद् द्विसहस्रगुणितस्थूलदर्शनसामर्थ्यशालिसूक्ष्मदर्शकं यन्त्रमपि केवलं क्षीणक्षीणकेशतन्तुवदेव स्वरूपं दर्शयति। इयतीषु सूक्ष्मासु नाडीष्वपि भूयस्योऽन्या नाड्यो भवन्ति। मानवस्य सम्पूर्णमपि शरीरं लतायास्तन्तुजालकसदृशेन नाडी-वितानेनाच्छादितं विद्यते। एका प्राण-शक्तिरेव नाडीतन्त्रस्याधारभूताऽस्ति।[1]

गायत्रीजपस्य शरीरे प्रभावः

इदं पुरा प्रतिपादितमस्ति यद् गायत्री-साधनाया लक्ष्यं विराजि स्थितायाः प्राण-शक्तेराकर्षणं विधाय पिण्डे स्थितया प्राणशक्त्या संयोजनं वर्तते। पृथ्व्याः प्राणस्रोतः सूर्योऽस्ति। अनन्तानां रश्मीनां रूपे सूर्येण प्राणशक्तिर्निरन्तरं प्रवाहिता भवति। अन्न-जल-वाय्व-ग्न्यौषधीनां माध्यमेन मानवशरीरस्य पोषणं सूर्यस्य प्राणशक्तिरेव विदधाति। सामान्यतः समस्तं दृश्यं जगद् नैसर्गिकेषु नियमेषु निबद्धं सत् तस्या एव प्राणशक्तेरुपभोगं विधत्ते। मानवशरीरमपि तेष्वेव नियमेषु स्वस्य नैसर्गिकस्य प्राणस्योपभोगं करोति। अस्यां समस्तायां सृष्टौ मानव एवैकमात्रमीदृशो विद्यते यो यदि कामयेत तदा स्वीयात् प्रयत्नाद् यां प्राणशक्तिं स प्राप्तवानस्ति ततोऽप्यधिकां प्राणशक्तिमर्जयितुं शक्नोति। प्राणशक्तिरेव सर्वासां शक्तीनां मूल आधारः।

वेदा भारतीयवाङ्मयस्यापौरुषेयाणि ज्ञानानि सन्ति। अस्माकं महर्षिभिः प्राण-शक्तेः स्रोतसोऽनुसन्धानं विधाय गायत्रीरूपा माता प्राप्ता। गायत्रीमन्त्र एव तन्माध्यमं वर्तते येन मानवो विराजः प्राणशक्तेर्दोहनस्य सामर्थ्यं लब्धुं शक्नोति। यावत्या अधिकायाः प्राणशक्तेः स दोहनं करिष्यति तावत्येवाधिका प्राणशक्तिर्मानवीयं पिण्डमधिकाधिकं शक्ति-सम्पन्नं विधास्यति। गायत्री-साधनया जपेन च मानव-शरीरस्य नाडीष्वधिकाधिकं प्राणशक्तेः सञ्चारो भविष्यति। एतेन समग्रं नाडीसंस्थानं तथा नाड्यो विकासं प्राप्स्यन्ति।

१- एतद्विषये 'शोधप्रभायां'— **'शरीरस्थ साढ़े तीन लाख नाडियां'** इति शीर्षक आचार्य-रमानाथशास्त्रिणां निबन्धोऽप्यवलोकनीयः। 'राजेन्द्रप्रसाद-जन्म-शताब्द-स्मृत्यङ्के' पृ० २०३-२०६।

मानवस्य शारीरिक्या मानसिक्याश्च शक्तेराधारः शरीरस्था नाड्य एव सन्ति। मस्तिष्कादारभ्य हस्तपादाङ्गुष्ठं यावत् सर्वाणि नाडीसंस्थानानि प्रबुद्धानि भवन्ति तदा तस्मै साधकाय किमप्यसाध्यं नावशिष्यते। प्रकृतेः किमपि रहस्यं तस्मै रहस्यं न तिष्ठति। ईदृशस्य साधकस्य सकलं शरीरं दिव्यतापूरितं सम्पद्यते। रोम-रोमतस्तेजः प्रस्फुटितं भवति। मेरुदण्ड-स्थिता गायत्र्याः सर्वे वर्णाः स्वीयानि सहजस्वरूपाणि विभावयितुं प्रवर्तन्ते। ईदृशो जनः स्वीये स्थाने स्थितः पृथिव्याः कस्मिन्नपि भागे स्वकीयामिच्छाशक्तिं सम्प्रेष्य तदनुरूपस्य कार्यस्य प्रेरणां क्रियान्वितिं च कारयितुं शक्तो भवति।

मस्तिष्कस्थे नाडीचैतन्ये मणि-मन्त्रौषधीनां योगः

मस्तिष्के वर्तमानानां नाडीनां चैतन्यमेव शरीरस्थनाडीचैतन्यस्य मूलाधारः। नाडी-चैतन्यस्य पृष्ठभूमौ मणिमन्त्रौषधीनां यद् योगदानमस्ति तद्विषये भगवताऽऽद्यशङ्कराचार्येणागम-निगमयोरुभाभ्यां पक्षाभ्यां तुलनात्मकं समन्वयं साधयता मणि-मन्त्रौधीनां साकार-रूपं प्रतिपादितम्। वैदिके पूजाप्रकरणे पूजाया अष्टाविंशतिमन्त्राः सन्ति। तेभ्य एव मन्त्रेभ्यः कूटात्मकं बीजात्मकं वा रूपं दत्त्वा गायत्रीमन्त्रस्य महाषोडश्याश्च स्वरूपं प्रतिपादितम्। एतद्विषये यद्यपि कोऽपि स्वतन्त्रो ग्रन्थो नोपलभ्यते तथापि यत्र तत्र मणिमन्त्रौधीनां परस्परं समन्वयस्य सूचकाः सङ्केता ग्रन्थेषु प्राप्यन्ते। यावत् त्रयाणामपि मणिमन्त्रौषधीना-मैक्यं न भवति तावत् कुण्डलिनीप्रबोधः खपुष्पायित एव भवति।

हठयोगस्य क्रियाभिः कुण्डलिन्याः किञ्चिदुद्बोधनं भवति परं यावत् त्रिकमिदं समन्वितं न भवति तावन्महाशक्तेः कुण्डलिन्या व्युत्थान-प्रक्रिया सम्पूर्णेन रूपेण क्रियान्विता न भवतीति वास्तविकं तथ्यम्।

प्राणिषु यथा केचन प्राणिनो मणिधरा भवन्ति तथैव कतिपय-मानवानां मस्तिष्केऽपि जन्मत एव मणिस्तिष्ठति। मस्तिष्कस्य सप्तमभागीये प्रथमे प्रभागेऽस्य मणेर्नियतं स्थानमस्ति। जन्मजातमणेरतिरिक्तं मणेरस्य निर्माणं मानवमष्तिष्के द्विधा विधाभ्यां सम्पद्यते, तत्रैका मणि-विधा द्वितीया चौषधविधा। येषु मानवेष्वयं मणिर्जन्मत एव भवति तेषां मणेरियं शक्तिः स्वत एव कार्यं करोति परं तन्मणिशक्तौ मणिवतो नियन्त्रणं न भवति प्रायेण चांशिक-रूपेणैवापरिपक्वतया सा कार्यं करोति। पूर्णपरिपक्वमणिवन्तो जना विरला एव भवन्ति। एतादृशेषु जनेषु पिण्डगतशक्तीनां पूर्णत्वं स्वत एवोद्भवति। अपूर्णायां परिपक्वदशायामथ-वाऽविकसितायां स्थितावपि मणिः स्वीयं दिव्यं प्रभावं तु दर्शयत्येव। ईदृशा जनाः कस्याम-प्येकस्यां दिशि दिव्यत्वमलौकिकीं शक्तिं वा प्राप्नुवन्ति। तत्प्रभावेण ते सूक्ष्मजगतः प्राणिनो द्रष्टुं तैः सह भाषितुं सत्यामिच्छायां च सम्पर्कं स्थापयितुमपि शक्नुवन्ति। जन्मजातो मणिः केषुचिन्मनुष्येतरेषु प्राणिषु सर्प-गज-मण्डूक-शुक्तिकास्वपि भवति परं ते तदीयं कमप्यु-पयोगं कर्तुं न क्षमन्ते।

(क) मन्त्रेण मणि-निर्माणम्

अस्यायमभिप्रायोऽस्ति यन्मन्त्रात्मिक्या साधनया मणेर्निर्माणम्। तत्र मन्त्रेषु सर्वाधिकं

महत्त्वपूर्णो मन्त्रो गायत्री-मन्त्र एव । गायत्रीसाधना पिण्डगतशक्तेर्विकासस्य सर्वोत्कृष्टा साधनाऽस्ति। आर्यसंस्कृतौ सन्ध्याया गायत्र्याश्च यन्महत्त्वं प्रतिपादितमस्ति तस्य पृष्ठभूमाविदमेव रहस्यं निविष्टमस्ति । यो नियमितं सन्ध्यां गायत्रीजपं च करोति तस्य मस्तिष्के मणेर्बीजस्य निर्माणं प्रारभ्यते। नियमिता मन्त्रात्मिकी साधना तद्बीजस्य स्वरूपं निर्धारयितुं प्रवर्तते साधनया सहैवोत्तरोत्तरं मणेर्विकासश्च भवति ।

(ख) ओषधिद्वारा मणिनिर्माणम्

ओषधिर्विश्वप्राणानां विविधरश्मीनां साकारं स्वरूपमस्ति । सर्वा ओषधयो दिव्य-चेतनाभिरोतप्रोता भवन्ति । मन्त्रात्मिक्याः प्राणशक्तेः साधनाया माध्यमेन यथा मस्तिष्कगताः सुप्ता नाड्यः प्रबोध्यन्ते तथैवौषधिरूपया प्राणशक्त्याः माध्यमेनापि मस्तिष्कस्था नाड्यः प्रबुद्धाः क्रियन्ते। औषधीया शक्तिर्नाडिकाः प्रबोध्य तासु मणेर्बीजारोपणं करोति । सततसाधनावदेव सततमोषधसेवनं मणये परिपक्वतां ददाति । ओषधिद्वारा मणि-निर्माणप्रक्रिया साम्प्रतं लुप्तप्राया विद्यते तथापि तन्त्रेषु यस्य वर्णस्य या ओषधिर्वर्णिताऽस्ति तदाधारेण मन्त्रवर्णानां या या औषधयो भवन्ति तासां सङ्कलनेन गुटिका-निर्माणपूर्वकमौषधि-सेवनेन तथा निर्मातुं शक्यते। यत्र तत्र मेधाजननाय धारणाशक्तये कवित्वाय वा ये प्रयोगा ओषधिरूपास्तान्त्रिकपद्धत्या सूचितास्तेषां सेवनमप्यत्र हितावहं स्यात् ।

कोऽयं मणिः ?

मानव-मस्तिष्कस्य सप्तमभागवर्तिनः प्रथमप्रभागस्य यत् स्थानमाज्ञाचक्रं स एव मणिः। मणिना समस्तं कार्यसञ्चालनमाज्ञाचक्रस्य माध्यमेनैव भवति । आज्ञाचक्रस्य समक्षवर्तिनि पूर्णतः पृष्ठ-भागे मणेः स्थानमस्ति। अयं मणिर्दिव्यप्रकाशकार्युपकरण (सर्च लाइट)-वत् सततं जागरितो भवति। मन्त्रात्मकेन साधनेनाथवौषधसेवनेन किं वोभयोरपि समञ्चितेन साधनेन मस्तिष्कगता दिव्या नाड्य एकं स्थानमागत्य सङ्गता भवन्ति । सततसाधनायाः प्रभावादेतासां नाडीनां प्रथममेकः समन्वितो गुच्छको भवति । स एव च नाडीगुच्छकस्तरलो भूत्वैकाकारतां प्रतिपद्यते । तरलतायाश्चरमपरिस्थितेरनन्तरं तत्तरलं पिण्डं शनैः शनैः कठोरं भवितुमारभते। कठोरं सच्च क्रमशः कठोरतायाश्चरमां स्थितिं प्राप्नोति। इयमेव मणेः परिपक्वाऽवस्थाऽस्ति । मणिरूपे परिणतः स नाडीगुच्छकः पारदर्शी परमप्रकाशशाली च सम्पद्यते। स्वस्यां परिपक्वावस्थायां स सर्वाभ्यो नाडीभ्यः स्वीयं सम्बन्धं विच्छिनत्ति । एवं मणिस्वरूपेण स्थिरतां प्राप्य सर्वासां सर्वेषां च मध्ये स्थित्वाऽपि सर्वाभ्यः सर्वेभ्यश्च पृथक् स्वतन्त्रावस्थितिं गच्छति ।

मणेः परिपक्वतायास्तात्पर्यमिदमस्ति यत् पिण्डगतानां शक्तीनां पूर्णो विकासः। ईदृशो जनः स्वकीयाभिः शक्तिभिर्विराजो ब्रह्माण्डस्य शक्तिष्वपि नियन्त्रणं साधयितुं प्रवर्तते । पिण्डगताः शक्तयो विराजः सजातीयाः शक्तयो भवन्ति। ईदृशो जनोऽत्यन्तं प्रतिभावान् तेजस्वी दिव्यद्रष्टा च सम्पद्यते । संसारस्य किमपि रहस्यं तस्मै रहस्यं न तिष्ठति।

आगमग्रन्थेषु यस्य तृतीयनेत्रस्याथवा दिव्यनेत्रस्य वर्णनं विद्यते तदस्य मानव-मणेरेवै-

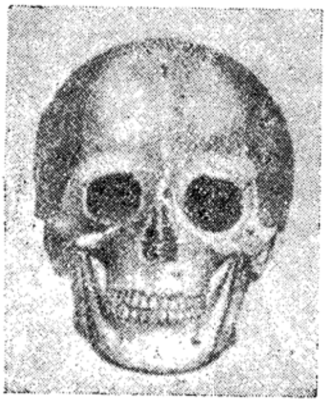
कस्या आंशिकशक्तेः प्रतीकमस्ति । मणेः परिपक्वतैव दिव्यस्वरूपस्य पूर्णो विकासो वर्तते । अस्यां स्थितौ साधकः पिण्डत उत्थाय विराजा ब्रह्माण्डेन सहाभिन्नं सम्बन्धं स्थापयति ।

आर्यकपालशास्त्र-विज्ञानम्

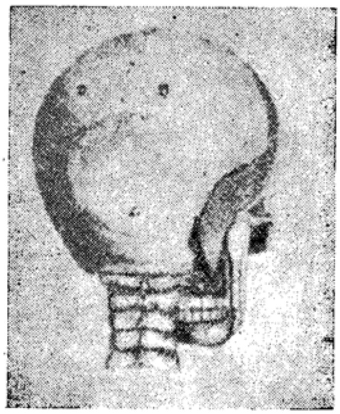
मस्तिष्कस्य या स्थितिर्गतिः प्रवृत्तिश्चात्र वर्णितास्तासां मूलं कपालशास्त्रानुसारं विज्ञेयं विद्यते । अतस्तस्य संक्षिप्तः परिचयोऽत्र प्रस्तूयते —

सम्पूर्णस्य विश्वपुरोडाशस्य संरक्षणं व्यवहारश्चाष्टकपालेषु भवति । मनुष्यस्य शिरोभागे द्वाविंशत्यस्थीनि सन्ति किन्तु तेषु मुख्यानि शिरोऽस्थीन्यष्टावेव सन्ति । यथा —

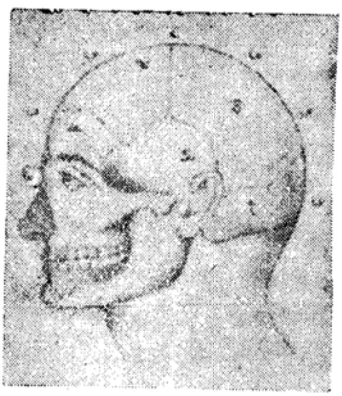
(१)



(२)



(३)



(४)



मुखसहिता अस्थ्नामष्टौ विभागाः

1. Frontap	ललाटपट्टिकाधारः	5. Maear	दन्ताधारः
2. Parictab	तनूकरणास्थि	6. Nasal	नासिक्यास्थि
3. Sphenoid	कपालाधिष्ठास्थि	7. Mazeelary	मुखाधारः
4. Temporat	शङ्खास्थि	8. Ocipitab	शिरःपृष्ठम्

आर्यकपालशास्त्रे परःसहस्राणां गतीनां व्यवहाराणाञ्च वर्णनस्याष्टकपालेषु तथाष्ट-शक्तिषु समादेशं विधाय दर्शितमस्ति। तस्य कपाले यत्स्थानमस्ति तदित्थं विद्यते —

(५)



कपालशास्त्रानुसार्यष्टौ-विभागाः

१- शिरःपृष्ठास्थि	आश्रमिका शक्तिः	
२- कर्णविवराधारास्थि	स्वसंरक्षण—	"
३- तनूकरणास्थि	स्वोत्कर्षिणी	"
४- प्रकृत्यस्थि	स्वतः प्रवर्तिनी	"
५- ललाटपट्टिका	ज्ञानप्रवर्तिका	"
६- नासिक्यास्थि	विषयग्राहिणी	"
७- नृकपालास्थि	विवेचनी	"
८- पौरुषास्थि	मनोव्यवहार—	"

अथ चैतेषां कपालास्थ्नां सत्ताधारचक्राक्षराणां परिज्ञानाय तालिकेयं विलोकनीया-ऽस्ति —

१. ग्राम्या, ग्रह-प्रवृत्ति-सत्ता —		तारसम्बन्धः	मूलबन्धः	४. अक्षराणि	
२. स्वहित-परनिष्ठा	"	स्वाधिष्ठाने	"	६.	"
३. स्वार्थभाव —	"	मणिपूरके	"	१०.	"
४. सात्त्विकभाव —	"	अनाहते	"	१२.	"
५. अर्धचित्तभाव —	"	विशुद्धाख्ये	"	१६.	"
६. विषयग्रहण —	"	आज्ञाचक्रे	"	२.	"
७. चिच्छक्ति —	"	सहस्रदले	"	ॐ अक्षरम्	
८. सुप्ता	"	बीजक्षराणि	"	....	

अष्टसु कपालेषु यावत्यः सत्ताः सन्ति तासु द्वाचत्वारिंशत्सङ्ख्यकानां सत्तानां परिज्ञानं सामान्या जना अनुभवन्ति। परं तास्वष्टौ सत्ता, या मनोव्यवहार एव समाविष्टाः सन्ति तासां बोधः केवलं योगाचरणशीलानामेव भवति। ता अष्टौ शक्तयः "१- प्रभा-प्रकाशशक्तिः, २- नम्रवर्णता-बीजज्ञानं, ३- उन्मनी-श्रुतिविज्ञानं, ४- निस्सङ्गी-वर्णार्थ-सम्यक्त्वज्ञानं, ५- ब्रह्मणी-गतिविज्ञानं (स्वाहा), ६- लोहिता-गतिहेतुः (स्वधा), ७- षोडश चन्द्रकलाः,

द्वादश सूर्यकलाः" सन्ति । इमाः सम्मिल्य ५० पञ्चाशद् भवन्ति ।[1]

उपरि निर्दिष्टानां विचारपूर्वकं दर्शनेन स्वस्मिन् नैसर्गिकी सत्ता काऽस्ति तथा तस्याः परास्वरूपं कीदृशं विद्यते किञ्चापरायां सर्वथा विरुद्धो व्यवहारः कथं भवतीति ज्ञाने सति स्वस्य जीवनशोधनस्यैकः विशुद्धो मार्गो ज्ञातुं शक्यते । यथा हि परायां यत्र योगानन्दोऽस्ति तत्रैवापरायां काम्य-व्यवहारस्यानन्दो भवति, अथ च तयोः कतमस्मिन्नानन्दे यातव्यमिति विचार एव बुद्धिमतां कार्यमस्ति ।

इत्थं मस्तिष्कस्य कपालशास्त्रस्य मनश्चक्रस्य मणेश्च ज्ञानं सम्प्राप्य तत्तद्विषयकोद्-बोधनप्रक्रियाणां साधनया सिद्धिः सुकरा भवति । अष्टपालेषु यान्यष्टाक्षराणि भवन्ति तान्यपि गायत्र्या अक्षराण्येव । साम्प्रतं गायत्रीमन्त्रस्याक्षरात्मिकायाः शक्तेः श्रीमदाद्यशङ्कराचार्याणां **'यतिदण्डैश्वर्य-विधान'**—ग्रन्थानुसारं परिचयः प्रस्तूयते —

गायत्रीमन्त्रस्याक्षरात्मकशक्तिपरिचयः

श्रीमद्भिः शङ्कराचार्यचरणैर्गायत्र्याश्चतुर्विंशतिवर्णानां द्वात्रिंशच्छक्तयो निर्धारिताः । तत्रार्धाक्षराणमपि गणनया प्रथम-तकारादारभ्यान्तिमार्धतकारपर्यन्तमेकत्रिंशद्वर्णा भवन्ति । तुरीयपादस्य पकारादारभ्यान्तिमार्धमकारपर्यन्तं नवाक्षराणि भवन्ति । इत्थं ३१ + ९ = ४० वर्णा भवन्ति । द्वात्रिंशन्नाडीनां शक्तिपक्षे गायत्र्यास्त्रिपादानामेकत्रिंशद्वर्णास्तथा तुरीयपादस्य नवानां वर्णानामेका नाडी मिलित्वा ३१ + १ = ३२ द्वात्रिंशद् भवन्ति । अत्रैकनाड्या नवाक्षराणामेकस्याः शक्तेः स्वीकरणे कारणमिदं विद्यते यच्चतुर्थपादस्य प्रथमाक्षरस्य प्रथमा नाडी **'परब्रह्मात्मिका'**ऽभिधानाऽस्ति तस्यामेवान्या अष्टौ नाड्योऽन्तर्हिता मन्यन्ते । गुच्छरूपेण परस्परं स्यूतत्वादेकरूपतैवास्याः स्वीक्रियते । एवं सत्यप्यक्षररूपात्मिकाः शक्तयोरस्तित्वं च तासां पृथक्-पृथग् वर्तत एव । एता द्वात्रिंशन्नाड्यो मानवमस्तिकान्निःसृत्य हस्तपादाङ्गुष्ठावधि सञ्चरन्त्यः शरीरस्य मस्तिष्कस्य च समस्ताया जीवनशक्तेराधारकेन्द्रत्वं सम्प्राप्य मानवस्या-स्तित्वं सुरक्षन्ति ।

एतेषां गायत्र्याश्चत्वारिंशद्वर्णानां विशेषणसमन्विता नामगर्भाः श्लोका इत्थं विद्यन्ते —

१- पञ्चाशद्वर्णमयी मातृकाऽप्येतासां शक्तीनां स्वरूपेण विकसिताः सन्ति । कपाले पञ्चा-शद् वर्णानां स्थानान्यपि चित्राधारेण दर्शितानि सन्ति । सत्तानां परास्वरूपे अपरा-स्वरूपेऽपि प्रत्येकं वर्णस्यार्थो भिन्नो भिन्नो भवति । मूर्धनि मनश्चक्रमष्टदलं विद्यते, तदनुसारं मनोव्यवहारः कथं चलतीत्यपि विशिष्य ज्ञातव्यं वर्तते । अत्र विस्तृतेः कारणात् तद्विषये न लिखितम् ।

श्रीमत्परमहंस - परिव्राजकाचार्य - श्रीमदाद्यशङ्कर - भगवत्पादाचार्यवर्य-प्रणीत-**यतिदण्डैश्वर्य-विधाना**नुसारं गायत्र्याश्चत्वारिंशन्नाम्नां निर्देशका: श्लोका:

तत्वज्ञा ज्ञानदात्री च **तत्वज्ञानप्रबोधिनी** । शास्त्रे ख्याता सदा वन्द्या **सर्वशास्त्रार्थवादिनी** ॥
विबुधेषु च विज्ञेया **विबुधार्थस्वरूपिणी** । सर्वज्ञा सर्वदा देवी **तुर्यामार्गप्रदर्शिनी** ॥
सनातना **रमा** दिव्या **वयोवस्थाविवर्जिता** । रेवाया रम्यतीर्थे च **रेवातीरनिवासिनी** ॥
आगमैकसदारूपा **निखिलागमवेदिनी** । **यमुना मोक्षदा** रम्या **भक्ताभीष्टप्रदायिनी** ॥
भक्ताभीष्टप्रदा **रम्या गोवर्धनविवर्धिनी** । शान्तिप्रिया च विघ्नेशी **देशोपद्रवनाशिनी** ॥
वरदात्री सर्वदा सा **वक्रतुण्डवरप्रदा** । **स्पन्दरूपा योगगम्या** ज्ञानविज्ञानसौख्यदा ॥
धीरवन्द्या वन्दिता च **महावैरिविनाशिनी** । समग्रेषु च कार्येषु **हितकर्मफलप्रदा** ॥
धिषणा योधिनी सान्या **योगक्षेमविहारिणी** । **नवसिद्धिसमाराध्या प्रभवा रोग-शमनी** ॥
चोरघ्नी चोरहन्त्री च **दक्षिणामूर्तिरूपिणी** । वन्द्या च वेदमाता सा **यात्रापापविवर्जिता** ॥
स्तोतव्या छन्दसां माता **तुरीयपथगामिनी** । **परब्रह्मात्मिका** ब्राह्मी **रोगेशी रमणी-प्रिया** ॥
जगत्-प्रिया सेव्यमाना परमा **सागराम्बरा** । **वेदाक्षरपरीताङ्गी दोहिनी माधवी तथा** ॥
द्वात्रिंशदक्षरैरुक्ता गायत्री परमा शुभा । अतोऽस्या: पाठमात्रेण फलं प्राप्नोति वै शुभम् ॥

□

गायत्र्याश्चत्वारिंशन्नाम्नां नमोऽन्ता नामावली

क्र० सं०	गायत्र्या अक्षराणि	गायत्रीपरकाणि नाडीनामानि	
१.	(त)	तत्वज्ञायै	नम:
२.	(त्)	तत्वज्ञानप्रबोधिन्यै	"
३.	(स)	सर्वशास्त्रार्थवादिन्यै	"
४.	(वि)	विबुधार्थस्वरूपिण्यै	"
५.	(तु)	तुर्य्यामार्गप्रदर्शिन्यै	"
६.	(र्)	रमायै	"
७.	(व)	वयोवस्थाविवर्जितायै	"
८.	(रे)	रेवातीरनिवासिन्यै	"
९.	(णि)	निखिलागमवेदिन्यै	"
१०.	(य)	यमुनायै	
११.	(म्)	मोक्षदायै	
१२.	(भ)	भक्ताभीष्टप्रदायिन्य	

१३.	(र्)	रम्यायै	"
१४.	(गो)	गोवर्धनविवर्धिन्यै	"
१५.	(दे)	देशोपद्रवनाशिन्यै	"
१६.	(व)	वक्रतुण्डवरप्रदायै	"
१७.	(स्)	स्पन्दरूपायै	"
१८.	(य)	योगगम्यायै	"
१९.	(धी)	धीरवन्द्यायै	"
२०.	(म)	महावैरिविनाशिन्यै	"
२१.	(हि)	हितकर्मफलप्रदायै	"
२२.	(धि)	धिषणायै	"
२३.	(यो)	योधिन्यै	"
२४.	(यो)	योगक्षेमविहारिण्यै	"
२५.	(नः)	नवसिद्धिसमाराध्यायै	"
२६.	(प्.)	प्रभवायै	"
२७.	(र)	रोगशमन्यै	"
२८.	(चो)	चोरघ्न्यै	"
२९.	(द)	दक्षिणामूर्तिरूपिण्यै	"
३०.	(या)	यात्रापापविवर्जितायै	"
३१.	(त्)	तुरीयपथगामिन्यै	"
३२.	(प)	परब्रह्मात्मिकायै	"
३३.	(रो)	रोगेश्यै	"
३४.	(र)	रमणीप्रियायै	"
३५.	(ज)	जगत्प्रियायै	"
३६.	(से)	सेव्यमानायै	"
३७.	(सा)	सागराम्बरायै	"
३८.	(व)	वेदाक्षरपरीताङ्ग्यै	
३९.	(दो)	दोहिन्यै	
४०.	(म्)	माधव्यै	

इत्थं गायत्री-मन्त्रस्य साधना सर्वासु साधनासु सर्वोत्तमं स्थानं धारयति। पुराणेषु सर्वत्र गायत्री-माहात्म्यं जपादि-विधानं चातीव विस्तरेण विनिविष्टमुपलभ्यते। स्कन्दवाय्वग्नि-भागवत-प्रभृतीनि पुराणानि तु सदृष्टान्तं समाहात्म्यं सविधानं सव्याख्यानं गायत्रीमन्त्रस्य तत्त्वं प्रतिपादयन्ति। स्मृतिषु मनोरारभ्य यावत्यः स्मृतयो लभन्ते तासु प्रायो गायत्रीमन्त्र-साधनायाः सन्ध्यायाश्च बिचाराः पुरस्कृताः सन्ति, तत्रापि भारद्वाज-विश्वामित्र-गोतम-याज्ञवल्क्यादि-स्मृतिषु गायत्र्युपासना-प्रकारा महनीया विद्यन्ते। साम्प्रतं कलौ ब्रह्मतेजोऽभिवृद्धये गायत्र्युपासनाऽत्यावश्यकी वर्तत इति निश्चित्य स्वस्वाधिकार-गुरूपदेश-सम्प्रदाय-परम्परानुसारं जपे स्मरणे स्तोत्रादिपाठे च सर्वथा प्रयतनीयमिति निवेदनम्।[1]

'श्रीविद्यारण्य'-वर्यैर्यतिवरगुरुभिर्बोधितो 'रुद्रदेवः',
संयोज्य स्वीयबुद्ध्या प्रकटितमकरोद् वेदमातुः कृपातः।
नित्यं कर्तव्यबुद्ध्या द्विजकुलजननाः सर्वकालोपयुक्तं,
गायत्रीमन्त्रजापं सविधि विदधतु श्रद्धयेत्यस्ति याच्ञा॥

कृष्णानन्दाप्त-विद्येन रुद्रदेवत्रिपाठिना।
निबद्धोऽयं हि गायत्र्या लेखः स्याद्विदुषां मुदे॥

□

१- गायत्री-मन्त्रस्य जपप्रकाराणां तन्त्रशास्त्रेषु प्रचुराणि विधानानि विद्यन्ते। यामलग्रन्थेषु विविधया नवीनया दृष्ट्याऽन्यान्य-देवता-मन्त्राणां विदर्भेण सह सुबह्व्यः प्रक्रिया अपि निर्दिष्टाः सन्ति। एवमेवानेकानि स्तोत्राणि तादृशि विद्यन्ते येषु मन्त्रजपस्य विशिष्टाः प्रकारा वर्णिताः सन्ति। तेष्वेव 'गायत्री स्तवराजो'ऽत्र प्रकाशितो विद्यते येन सह मन्त्र-सङ्केता अतीवोपयोगिनो विद्यन्ते तेऽपि द्रष्टव्या गुरवश्चोपास्य विधयो ज्ञातव्य इति।

सर्ववेद-सारभूत गायत्री-मन्त्र

—डा० त्रिपाठी

गायत्री वेदजननी

सनातनसाहित्य में वेद की महत्ता सर्वोपरि है और वेदों की उत्पत्ति का मूल ओङ्कार है। इस मूल का पहला अङ्‌कुरण हुआ वही "गायत्री-मन्त्र" के नाम से प्रसिद्ध है। गायत्री-मन्त्र का विस्तार वेदों के रूप में प्रकट हुआ और क्रमशः इसकी महिमा मन्त्र-ब्राह्मणात्मक वेदों में, मन्त्र-तन्त्र-यन्त्रात्मक आगमों में, अध्यात्मप्रधान उपनिषदों में, वेदों के समुपबृंहणकारी अष्टादश पुराण एवं उपपुराणों में तथा स्तुति-साहित्य में अत्यन्त आदरपूर्वक प्रसृत हुई। गायत्री-मन्त्र की आराधना के लिये प्रेरित करते हुए शास्त्रकार महर्षियों ने पद-पद पर कहा है कि "गायत्री परमजप है, गायत्री अत्यन्त आवश्यक तथा गौरवशाली है, गायत्री की अर्चा के बिना सत्पुरुषों में निन्दा होती है, केवल गायत्री की आराधना में निष्णात होकर द्विज—ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य मोक्षको प्राप्त करते हैं। सभी वेदों की सारभूत इस गायत्री की आराधना स्वयं ब्रह्मादिक देव भी सन्ध्या करते समय ध्यान और जप द्वारा करते हैं।"[1] ऐसे अनेक प्रमाणों के आधार पर ही गायत्री को वेदमाता माना जाता है।

नामकरण तथा व्याख्या

प्रस्तुत मन्त्र में तीन पद होने से इसका छन्द "गायत्री" है, यही कारण है कि ऐसे तीन पदों वाले मन्त्र का नाम गायत्री कहा जाता है। वैसे गायत्री पदकी व्युत्पत्ति 'गायन्तं त्रायते इति गायत्री' की जाती है जिसका अर्थ होता है— गान-स्तुति करनेवाले की जो रक्षा करे, वह है गायत्री। सम्भवतः इन्हीं महान् तत्त्वों के आधार पर प्रत्येक देवता का त्रिपादमन्त्र "गायत्री" कहलाने लगा और उसके स्तुतिकर्त्ता के संरक्षक धर्म ने ही उसे विश्वव्यापक बनाने में सहयोग दिया। इसी अर्थ की व्याप्ति सर्वत्र व्याप्त है। यही गायत्रीदेवी एकपदी, द्विपदी, त्रिपदी और चतुष्पदी के रूप में परिव्याप्त बन गई है।

---

१. गायत्री परमो जपः ॥४।४॥, गायत्र्यतिगरीयसी ॥५१६।'—बृहत्पाराशरस्मृति। एतदर्चाविसंयुक्त············गर्हणां याति साधुषु ॥२।८२॥ मनुस्मृति। गायत्रीमात्र-निष्णातो द्विजो मोक्षत्वमाप्नुयात् ॥१२।८।९०॥, सर्ववेदसारभूता गायत्र्यास्तु समर्चना। ब्रह्मादयोऽपि सन्ध्यायां तां ध्यायन्ति जपन्ति च ॥११।१५।१६॥

—देवीभागवत।

गायत्री-मन्त्र का स्वरूप

वैसे तो मन्त्रों के स्वरूप के विषय में मन्त्रशास्त्र—'बीजमन्त्र, मन्त्र और मालामन्त्र'—ऐसे तीन भेद करते हुए उनके अक्षरों का स्वरूप-निर्धारण करते हैं, परन्तु गायत्री मन्त्र एक वैदिक मन्त्र होने से चौबीस अक्षरों वाला माना गया है। अतः वह चौबीस अक्षरों की दृष्टि से 'माला-मन्त्र' की कोटि में आता है तथा अन्तिम अवस्था में फलदायक कहा जा सकता है।[1] किन्तु गायत्री मन्त्र का उपदेश तो प्रत्येक द्विज को बाल्यकाल में दिया जाता है और उसका जप भी तभी से आरम्भ होता है, अतः यह सिद्ध होता है कि गायत्री मन्त्र इन बन्धनों से मुक्त है। इस मन्त्र के अक्षरों की गणना यदि हम करते हैं तो कुल तेईस अक्षर ही होते हैं जिनमें अर्धाक्षरों की गणना नहीं होती। अतः यहां अर्धमात्रा गुरुगम्य है और दुर्गा सप्तशती के—'अर्धमात्रा स्थिता नित्या याऽनुच्चार्या विशेषतः'— इस कथन की पुष्टि भी इसी से होती है। प्रस्तुत मन्त्र के आरम्भ में प्रणव और त्रिव्याहृति का योग रहता हैं। शारदातिलक में सात व्याहृतियों का तथा शिरोमन्त्र का भी निर्देश है, जिसका हम प्राणायाम के अवसर पर जप करते हैं। इस प्रकार गायत्री-मन्त्र की अक्षर संख्या बढ़ जाती है।[2]

ॐ (प्रणव), भूर्भवः स्वः (त्रिव्याहृति), (इन तीन व्याहृतियों के साथ), महः जनः तपः और सत्यं (ये चार व्याहृतियां) और जोड़ देने से सात व्याहृतियां हो जाती हैं। तदनन्तर—तत्० भर्गो० धियो० इन तीन पदों को जोड़कर अन्त में (शिरोमन्त्र) 'ॐ आपो ज्योती रसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरोम्' का भी जप किया जाता है।

परमपूज्य स्वामी विद्यारण्यजी महाराज ने इस विषय पर विशेष आगमिक अध्ययन और मनन के आधार पर गायत्री-मन्त्रजप के लिये कुछ नवीन प्रकार बतलाये हैं, तथा उनकी दृढ इच्छा थी कि द्विज-समुदाय इस रहस्य को ज्ञात कर गायत्रीजप करे जिससे उसका अभ्युदय हो। एक समय लेखक के साथ चर्चा करते हुए पूज्य स्वामीजी ने बतलाला था कि—"यद्यपि संन्यासी होने के नाते गायत्री मन्त्रोपदेश आदि का मेरा अधिकार नहीं हैं, तथापि विश्वकल्याण के लिये प्रेरित होकर मैं ऐसा करता हूं। एतदर्थ मुझे नरक में भी जाना पड़े—तो जाऊंगा।" अनेक वर्षों तक पूज्यश्री ने नेपाल में निवास कर मन्त्र-तन्त्र शास्त्रों की खोज की है, एवं स्वयं भी एक उच्च साधक हैं। उनकी आज्ञानुसार गायत्री-मन्त्र जप का प्रकार यह है। मन्त्र—

ॐ भूर्भुवः स्वः ॐ ह्रीं तत्० ॐ श्रीं भर्गो० ॐ क्लीं धियो० ॐ नमः। और यदि साधक दीक्षित हो तो बाला, पञ्चदशी के तीन कूट, षोडशी अथवा महाषोडशी के तीन खण्डों के बीजों को

---

१. द्वाविंशत्यक्षरान्मन्त्रा मालामन्त्रा इति स्मृताः।
(तथा) अन्तिमे वयसि प्राहुर्मालामन्त्रान् फलप्रदान्।
—मन्त्रव्याकरण।

२. प्रणवाद्या व्याहृतयः सप्त स्युः सत्पदादिकाः।
चतुर्विंशत्यक्षरात्मा गायत्री शिरसाऽन्विता॥ २॥
—शारदातिलक, २१ वां पटल।

संयुक्त करके जप करे। यथा—

ॐभूर्भुवः स्वः ॐ ऐँ तत्० ॐ क्लीँ भर्गो० ॐ सौः धियो० ॐ नमः। इस जप के साथ ही प्रातःसंध्या भी विशिष्ट रूप से की जानी चाहिए। वर्तमान में सन्ध्या की जो पुस्तकें बाजार में मिलती हैं वे अपूर्णप्राय हैं। किसी में कुछ और किसी में कुछ। होता यह है कि उपासक की भावना डगमगाने लगती है और वह किंकर्तव्य-विमूढ बन जाता है। वास्तविकता तो यह है कि गुरुकृपा से ही यह सब प्राप्त करना चाहिये।

उपर्युक्त गायत्री-मन्त्र का जप प्रातःकाल के लिये १२ बजे से पूर्व करना हितावह है। मध्याह्न में इसका क्रम परिवर्तित होकर २-३-१ क्रम से पद जोड़कर जप करना चाहिये। सायं-कालीन जप में ३-२-१ क्रम से पद जोड़कर जप किया जाए। इसमें आदि का ॐकार तथा त्रिव्याहृति और अन्त में ॐ नमः पद यथावत् ही रहेंगे। 'गायत्रीं त्र्यक्षरां बालां' इत्यादि ध्यान-पद इस स्वरूप का संकेतक है। ब्रह्मचर्यावस्था में प्रातःकालीन मन्त्र, युवावस्था में मध्याह्न-जाप्यमन्त्र एवं वृद्धावस्था में सायंकालीन जाप्यमन्त्र अधिक फलदायी है।

इसके अतिरिक्त पञ्चप्रणवा-गायत्री का जप भी प्रसिद्ध है। इस प्रकार के प्रयोगों के सम्बन्ध में कुछ विद्वानों का यह कथन है कि "ये तान्त्रिक प्रयोगानुकूल जप-विधियां हैं अतः इनका प्रयोग सर्वसाधारण के लिये उपादेय नहीं है।" किन्तु उनके प्रति हमारा यह निवेदन है कि आगम और वेद के सामञ्जस्य से ही उपासना का मार्ग प्रशस्त होता है। बिना आगम-तन्त्र के सामान्य पूजादि कर्म भी अवैदिक हो जाएंगे। और वास्तविकता तो यह है कि हमारे प्राचीन महर्षियों ने भी इस प्रकार के प्रयोगों को कभी हेय नहीं बतलाया है तथा ऐसा करने से तात्का-लिक लाभ भी होता है, अनेक उपासक इस जप द्वारा आज सुखी और सम्पन्न हैं, अतः ऐसा करने में कोई दोष नहीं है, ऐसा हम मानते हैं। समस्त वेदादि शास्त्रों का सार गायत्री-मन्त्र में विराजमान होने से यह सर्वोपरि मन्त्र है, तथा इसकी ऐसी महिमा के कारण ही शास्त्रों में कहा गया है कि—

कुर्यादन्यन्न वा कुर्यादनुष्ठानादिकं तथा।
गायत्रीमात्रनिष्ठस्तु कृतकृत्यो भवेद् द्विजः॥१३॥

—कूर्मपुराण

गायत्री-मन्त्र की उपासना

सृष्टि के आरम्भ से ही गायत्री-मन्त्र की उपासना आरम्भ हो जाने से तथा बड़े-बड़े महर्षियों के भी इसकी उपासना में तल्लीन रहने से इस मन्त्र की साधना अत्यन्त व्यापक बन गई है। आज तक गायत्री उपासना के सम्बन्ध में सैंकड़ों ग्रन्थ लिखे गये हैं और उनमें लिखे गये विधि-विधानों की संख्या किसी भी अन्य मन्त्र की अपेक्षा कई गुना अधिक है। विश्वामित्र, जमदग्नि, भरद्वाज, गौतम, अत्रि, वशिष्ठ और कश्यप जैसे दिव्य महर्षियों ने जिसकी उपासना में अपनी पूरी आयु बिता दी हो, उसके विधान में न्यूनता कैसे रह सकती है?

सामान्य रूप से गायत्री उपासना के दो अंग माने जा सकते हैं। १-नित्य-कर्माङ्ग,

जिसमें गायत्री जप अत्यावश्यक हैं और इस जप का कोई फल तो नहीं मिलता, किन्तु वैसे नहीं किया जाता है तो प्रायश्चित्त अवश्य लगता है। इसी लिये "करणे फलाभावोऽकरणे प्रत्यवायः" यह नित्यकर्म का सिद्धान्त है और दूसरा अंग है २-काम्यकर्म। इसमें हम अपने इष्टकार्य की सिद्धि के लिये गायत्री की उपासना करके उसे प्राप्त कर सकते हैं। इस प्रकार गायत्री-मन्त्र अन्य मन्त्रों की समानता में आ जाता है। इन दो अंगों के अतिरिक्त इस मन्त्र की एक विशेषता और है कि हम जब किन्हीं अन्य काम्यकर्मों की साधना के लिए तत्पर होते हैं तब उससे भी कायिक, वाचिक और मानसिक तैयारी के लिये पहले गायत्री-मन्त्र के जप का विधान है, जिससे साधक की उपासना-सम्बन्धी योग्यता बढ़ती है। यदि ऐसा नहीं किया जाए तो शास्त्रकारों के कथनानुसार निष्फलता मिलती है।

ऐसी भिन्न-भिन्न उपासनाओं में साधकों को वैदिक अथवा तान्त्रिक पद्धति का अथवा तो दोनों पद्धतियों के मिश्रित रूप का आश्रय लेना पड़ता है। शुद्ध वैदिक उपासना में प्रातः सन्ध्यावन्दनादि कर्म कर लेने के पश्चात् पुरश्चरणादि के संकल्पानुसार दैनिक जप करना चाहिये तथा गायत्री देवी के ध्यानावाहनादि षोडशोपचार पूजन आदि कर्म करने चाहिये। यहां पुरश्चरण के सम्बन्ध में कुछ स्पष्टता इस प्रकार की जा सकती है—

पुरश्चरण शब्द की रचना पुरः (अर्थात् आगे) तथा चरण (अर्थात् चलना) इन दो शब्दों के द्वारा हुई है। साधना के लिये आगे बढ़ने में कुछ क्रियाएँ की जांय तो सरलता से सिद्धि मिल सकती है। चलने की क्रिया में गति, आगति और स्थिति ये तीन बातें आवश्यक होती हैं। पुरश्चरण में भी इन तीनों की आवश्यकता रहती है। गति में जो दोषों की आगति को रोक कर उचित शक्ति को प्रस्फुटित करने के लिये योग्य स्थिति चाहता है उसे पुरश्चरण अवश्य करना चाहिये। इस पुरश्चरण में (१) नित्यकर्म स्नानादि, (२) सन्ध्या, (३) गायत्री-पूजन (जिसमें प्रधान अंग पूजा, कवच, न्यास, ध्यान, स्तोत्रपाठ आदि आते हैं), (४) शाप-मोचन, (५)जप, (६) दशांश-हवन, (७) तर्पण, (८) मार्जन, (९) ब्राह्मण-भोजन और (१०) विसर्जन आदि क्रियाओं का विभाजन हो सकता है।[१] पुरश्चरण में प्रायः सवा लाख जप किया जाता हैं और विशेष में मन्त्राक्षरों की संख्या के अनुसार प्रत्यक्षरलक्ष जप करना चाहिये।

गायत्री की तान्त्रिक उपासना

तान्त्रिक उपासना में प्रयुक्त तन्त्र शब्द के सम्बन्ध में बहुत से लोगों की धारणा है कि वह कोई मलिन विद्या है अथवा तो किसी प्रकार के जादू, जन्तर-मंतर, टोना अथवा श्मशान-साधन की विद्या है। किन्तु यह केवल भ्रम है। शास्त्रों में 'तन्त्र' शब्द की व्याख्या वेद के अर्थ

---

१. पूजा त्रैकालिकी नित्यं, जपस्तर्पणमेव च। होमं ब्राह्मणभुक्तिश्च पुरश्चरणमुच्यते ॥
—कुलार्णवतन्त्र।

में ही की गई है[1] तथा शास्त्रों के विविध विस्तार को तन्त्र की संज्ञा दी गई है। अतः गायत्री की तान्त्रिक उपासना में भी मन्त्र विज्ञान में प्रदर्शित मार्ग का ही विस्तार मानना चाहिये। स्वामी प्रत्यगात्मानन्दजी ने अधिक स्पष्ट करते हुये बतलाया है कि तन्त्रविधान में मन्त्र मुख्य-मन्त्री है ओर मन्त्र के चैतन्य के लिये तथा समर्थ विनियोग के लिये यन्त्रों की भी विशेष आवश्यकता रहती है।[2] गायत्री की यान्त्रिक उपासना में उपयोगी विषयों की विचारणा इस प्रकार है—

१- **आकृति** — आराधना में मन की एकाग्रता के लिये उपास्य देव की आकृति हो तो उससे साधना में सरलता आ जाती है। उस आकृतिके लिये हम निराकार और साकार स्वरूप का निर्धारण कर सकते हैं। निराकार स्वरूप में केवल तेजोमय शक्ति का चिन्तन होता है, जब कि साकार चिन्तन में—

मुक्ताविद्रुमहेमनीलधवलच्छायैर्मुखैस्त्रीक्षणैर्युक्तामिन्दुनिबद्धरत्नमुकुटां तत्त्वात्मवर्णात्मिकाम्।
गायत्रीं वरदाभयाङ्कुशकशाः शुभ्रं कपालं गदां, शङ्खं चक्रमथारविन्दयुगलं हस्तैर्वहन्तीं भजे॥

इस पद्य के सन्दर्भ का आश्रय उपयुक्त होता है। यदि यन्त्रमय स्वरूप का चिन्तन करना हो तो मध्य में त्रिकोण, उससे बाहर षट्कोण, उसके बाहर वलय, पुनः अष्टदल कमल तथा उसके भी बाहर वलययुक्त अट्ठाईस दलों वाले कमल की रचना करके उसमें शास्त्रोक्त पद्धति से मन्त्राक्षर लिखें। इस प्रकार तैयार बने हुए यन्त्र की प्राण-प्रतिष्ठा करके आराधना करनी चाहिये तथा यन्त्र की आवरण पूजा भी नित्य करनी चाहिये।

२- **ध्यान**— गायत्री का ध्यान करते समय गायत्री मन्त्र के वर्ण का ध्यान और उसकी शक्तियों का ध्यान किया जाता है। वर्णध्यान में 'गायत्री-पञ्चाङ्ग' आदि ग्रन्थों में सूचित पद्यों का अवलम्बन लेना चाहिये। उदाहरण के रूप में तत् पद का ध्यान इस प्रकार है—

तत्कारं चम्पकापीतं ब्रह्म-विष्णु शिवात्मकम्।
शतपत्रासनारूढं ध्यायेत् सुस्थान-संस्थितम्॥

चम्पे के पुष्प जैसे पीत, ब्रह्मा, विष्णु और महेशरूपी कमल पर विराजमान ऐसे 'तत्' पद का ध्यान करना चाहिये। यदि गायत्री देवी की शक्तियों का ध्यान करना हो तो ऊपर दिखलाये हुए पद्य के आधार पर तथा—

पञ्चवक्त्रां दशभुजां सूर्यकोटिसमप्रभाम्।
सावित्रीं ब्रह्मवरदां चन्द्रकोटि-सुशीतलाम्॥

---

१. श्रुतिश्च द्विविधा—वैदिकी तान्त्रिकी च। इति तन्त्राणामपि श्रुतिरिति व्यवहारः—(हारीतधर्मशास्त्र)। वैदिकी तान्त्रिकी चैव द्विविधा कीर्तिता श्रुतिः।
—कुल्लूकभट्ट, मनुस्मृति टीका।

२. तन्त्रविधानेषु मन्त्रस्य मुख्यमन्त्रस्य मन्त्राणां वा चैतन्योद्बोधनाय समर्थविनियोगाय च यन्त्राणामपि सविशेष उपयोगः।
(अध्यक्षीय भाषण, तन्त्रसम्मेलन, वाराणसी)

त्रिनेत्रां सितवक्त्रां च मुक्ताहार-विराजिताम् ।
वराभयाङ्कुशकशा-हेमपद्माक्षमालिकाम् ॥
शङ्खचक्राब्जयुगलं कराभ्यां दधतीं पराम् ।
सितपङ्कज-संस्थां च हंसारूढां सुखस्मिताम् ॥
ध्यात्वैवं मानसाम्भोजे गायत्रीकवचं पठेत् ।

इस प्रकार ध्यान किया जा सकता है। वैदिक सन्ध्या के अनुसार त्रिकाल सन्ध्या में गायत्री के तीन स्वरूप माने गये हैं। उनमें प्रातः ब्रह्माणी, मध्याह्न में रुद्राणी और सायंकाल लक्ष्मी का स्वरूप होता है। इनके स्वरूप-परिवर्तन के साथ ही वेद, गोत्र, वसन, आभरण, वाहन आदि भी बदल जाते हैं, यह ध्यान में रखना चाहिये।

३- **कवच**— साधक को आत्मरक्षा के लिये कवच का पाठ करना चाहिये और यह कवच साधक के अंगों पर भगवती की शक्तियों द्वारा आच्छादन बन जाता है ऐसी भावना रखनी चाहिये। यह कवच भी तीन प्रकार का होता हैं, पद-शक्तिमय, अक्षर-शक्तिमय तथा नाम-शक्तिमय। जैसे कि—

१— **तत्पदं पातु मे पादौ जङ्घे मे सवितुः पदम् ।**
वरेण्यं कटिदेशं तु नाभिं भर्गस्तथैव च ॥

२— **तद्वर्णं पातु मे मूर्द्धनि सकारः पातु भालकम् ।**
चक्षुषी मे विकारस्तु श्रोत्रे रक्षेत् तुकारकः ॥

३— **गायत्री पूर्वतः पातु सावित्री पातु दक्षिणे ।**
ब्रह्मविद्या च मे पश्चादुत्तरे मां सरस्वती ॥

इन पद्यों का पाठ करते समय सूचित अंगों पर हस्तस्पर्श करना अथवा तत्सम्बन्धी भावना से भी उचितविधि पूर्ण की जाती है। आचार्यों ने कवच के अन्य प्रकार भी प्रस्तुत किये हैं, परन्तु विस्तारभय से यहां वे नहीं दिये जा रहे हैं।

४- **न्यास**— मानसिक दृढ़ता और विचारपुष्टि के लिये गायत्री-न्यास की भी आवश्यकता है, वह भी पदमय, अक्षरमय, तथा नाममय आदि भेदों में, अंगन्यास, करन्यास, शरीर-न्यास आदि रूपों में प्राप्त होता है।

५- **स्तोत्र**— उपास्य देवता की अपूर्व महिमा के वास्तविक स्वरूप को प्रस्तुत करने वाले तथा विविध छन्द, अलङ्कार और कथानकों से अङ्कित असंख्य स्तोत्र गायत्री देवी के लिखे गये है। उनमें से एक-दो स्तोत्रों का अपने समय की अनुकूलता के अनुसार नित्य पाठ करना चाहिये।[1]

---

१. लेखक ने एक 'गायत्री-लहरी' ग्रन्थ का निर्माण किया है—जिसमें अनेक विषयों का समावेश द्रष्टव्य है। यह **'गायत्री-रहस्य दर्पण'** में प्रकाशित है।

६- **शापविमोचन**— पुराणों में गायत्री के शाप से सम्बन्धित दो कथाएँ इस प्रकार मिलती हैं —

(१)—ब्रह्माजी की प्रथम पत्नी सावित्री पति की आज्ञा होने पर भी एक यज्ञ में सम्मिलित नहीं हुई, तब द्वितीय पत्नी गायत्री ने पति की आज्ञानुसार उस यज्ञ में पूर्ण सहयोग दिया, जिससे असन्तुष्ट होकर सावित्री ने गायत्री को शाप दिया कि 'तेरी शक्ति नष्ट हो जाएगी।' बाद में देवताओं के अनुनय-विनय से सावित्री ने शापोद्धार मन्त्र दिया।

२—एक समय ब्रह्मा, वसिष्ठ और विश्वामित्र इन तीनों ने अपनीअपनी स्वतन्त्र सृष्टि चलाने के लिये गायत्री की उपासना की तथापि गायत्री ने उनको सृष्टिनिर्माण-शक्ति प्रदान नहीं की, इससे रुष्ट होकर उसको शाप दिया, जिसका निस्तार देवताओं के अनुनय से शाप-विमोचन-मन्त्र द्वारा बतलाया।

इस प्रकार शापविमोचन में—यम, वरुण, कश्यप, अंगिरा, ब्रह्मा, वसिष्ठ, नकुली और विश्वामित्र के शापविमोचन का अधिक महत्त्व है, जिसे गायत्री-पञ्चाङ्ग, आह्निकसूत्रावली एवं अन्य ग्रन्थों से जानना चाहिये। यदि वैसा न हो सके तो जप से पूर्व निम्नलिखित मन्त्र का जप किया जा सकता है—

ॐ यद् ब्रह्मेति ब्रह्मविदो विदुस्त्वां पश्यन्ति धीराः सुमनसो वा गायत्री त्वं ब्रह्मशापाद् विमुक्ता भव।

७- **हवन**— हवन की विधि प्रायः प्रसिद्ध है, जो जप संख्या के दशांश के रूप में की जाती है।

८-९-१०-तर्पण, मार्जन, एवं ब्राह्मणभोजनादि—ये विधियां भी दशांश के आधार पर अवरोह क्रम से सम्पन्न की जाती हैं।

११- **मुद्रा**— गायत्रीजप से पूर्व तथा अन्त में कतिपय मुद्राओं के प्रदर्शन का भी विधान है। कहीं-कहीं तो यह भी कहा गया है कि—जो मुद्राएँ नहीं जानता है उसका गायत्री-जप ही निष्फल होता है। मुद्रा शब्द का शाब्दिक अर्थ है—मोद-प्रदान। लौकिक दृष्टि से यदि हम मुख से केवल 'नमस्कार' कह देते हैं और दोनों हाथ जोड़ कर नमस्कार-मुद्रा न दिखायें तो वह दम्भ ही कहा जाएगा। इसी प्रकार आराध्य के समक्ष मुद्रादर्शन का विधान समझना चाहिये। यह देवताओं को प्रसन्न करती है और असुरों का द्रावण अर्थात् विनाश करती है। अथवा विघ्न-समूहों का मुद्रण इनके प्रदर्शन से होता है और ये देवताओं की सान्निध्यकारक हैं। अतः अर्चन, जप, ध्यान आदि के समय मुद्राओं कों दिखाना आवश्यक है। गायत्री जप में सुमुख-सम्पुटादि २४ मुद्राएँ जप से पूर्व एवं सुरभि-ज्ञानादि आठ मुद्राएँ जपान्त में दिखाई जाती हैं, जो सर्वत्र प्रसिद्ध हैं।

अन्य उपाङ्ग— गायत्री की साधना का विस्तार अतिविस्तृत होने से इसमें **अष्टोत्तर-शतनाम, सहस्रनाम, गायत्रीहृदय, गायत्रीकवच, गायत्री-पञ्जर, गायत्री आग्नेयास्त्र, गायत्री-रामायण** और **गायत्री-योग, गायत्र्यक्षर नामावली** आदि के पाठ का भी विधान है।

'गायत्री' नाम की महत्ता

गायत्री मन्त्र की इतनी महत्ता होने से वैदिक और जैन-बौद्धादि अन्य धर्म-सम्प्रदायों में भी अनेक गायत्री मन्त्रों का प्रचलन हुआ है। गायत्री के ४ अक्षरों में २४देवताओं का निवास इस प्रकार है १-गणेश, २-नृसिंह, ३-विष्णु, ४-शिव, ५-कृष्ण, ६-राधा, ७-लक्ष्मी, ८-अग्नि, ९-इन्द्र, १०-सरस्वती, ११-दुर्गा, १२-हनुमान्, १३-पृथ्वी, १४-सूर्य, १५-राम, १६-सीता, १७-चन्द्र, १८-यम, १९-ब्रह्मा, २०-वरुण, २१-नारायण, २२-हयग्रीव २३-हंस और २४-तुलसी।

इन देवी देवताओं के भिन्न-भिन्न गायत्री-मन्त्र भी उपलब्ध होते है। यथा—'एकदन्ताय विद्महे, वक्रतुण्डाय धीमहि, तन्नो दन्ती प्रचोदयात्।' इस प्रकार सभी देवों के गायत्री मन्त्र में तीन पद होते हैं जिनमें विद्महे, धीमहि और प्रचोदयात्, पदों का समावेश अवश्य आता है। जैनगायत्री, पद्मावती-गायत्री, भैरवगायत्री आदि की रचना भी इसी आधार पर हुई है। श्रीविद्या के पञ्चदशी और षोडशी मन्त्रों के अर्थ भी गायत्री मन्त्र जैसे ही हैं।[1] अतः यह स्पष्ट है कि गायत्री मन्त्र की महत्ता कितनी विशद और विश्वव्यापी है।

१—सन्ध्या एवं गायत्री-मन्त्र-विषयक कुछ ज्ञातव्य

(क) यथोचित काल में यदि सन्ध्या नहीं की जा सके तो **'प्रत्यङ्गिरा-सूत्रकार'** ने एक व्यवस्था दी है, जिसका निर्देश श्रीशङ्कराचार्य-प्रणीत **'गायत्री-पुरश्चरण-पद्धति'** में किया गया है। सूत्रकार का कथन है कि सन्ध्या का काललोप होने पर अथवा अशक्ति की स्थिति में उन-उन कालों में मानसिक रूप से इस मन्त्र का यथाशक्ति जप करें—

"ॐ ऐं ह्रीं श्रीं परमदुष्करकर्मच्छेदिन्यघोरे वरदे विच्चे माये त्रैलोक्यरूप-सहस्रपरिवर्तिनि मातृगणे क्लूं श्रीं ह्रीं ऐं ॐ।।

इस प्रकार जप करने से सन्ध्या करने के फल की सिद्धि होती है।

(ख) अन्य आचार्यों का कथन है कि—

सन्ध्याकाले व्यतिक्रान्ते जपं कुर्यात् पुनर्म्मनः।
ऋचं वाचं त्र्यृचं जप्त्वा कालदोषो न विद्यते।।

१- गायत्री का सूक्ष्मरूप पञ्चदशी और षोडशी श्रीविद्या है। **'त्रिपुरोपनिषद्'** और **'वरिवस्या रहस्य'** आदि ग्रन्थों में कहा गया है कि—"गायत्री के दो रूप हैं, स्पष्ट और गोपनीय। चतुर्विंशत्यक्षरात्मक मन्त्र स्पष्ट रूप है और पञ्चदशी के त्रिकूटों में सङ्केतात्मक वर्ण उसके गोपनीय रूप के व्यञ्जक हैं।" श्रीविद्या पञ्चदशी के मन्त्र विभिन्न उपासक १- वरुण, २- धर्मराज, ३- अग्नि, ४- नागराज, ५- वायु, ६- बुध, ७- ईशान, ८- रति, ९- नारायण, १०- ब्रह्मा, ११- जीव, १२- अगस्त्य, १३- लोपामुद्रा, १४- मनु, १५- कुबेर, १६- नन्दी, १७- सूर्य तथा १८- दुर्वासा आदि के भेद से अनेक प्रकार के हैं तथा उनके भी काल-भेद एवं क्रमदीक्षा-भेदों से अनन्तरूप तथा विशिष्ट मन्त्र हैं।

इसके अनुसार अधोदर्शित चार मन्त्रों का जप करने से काललोपजनित दोष नहीं लगता है—

१—ॐ पुनर्म्मनः पुनरायुर्म्मऽआगात् पुनश्चक्षुः पुनः श्रोत्रं म आगात् । पुनः प्राणः पुनरात्मा मऽआगाद् वैश्वानरो ऽ ग्रदब्धस्तनूपा ऽ अग्निर्मा पातु दुरितादवद्यात् ।।

२ —ॐ ऋचं वाचं प्रपद्ये मनो यजुः प्रपद्ये साम प्राणं प्रपद्ये चक्षुः श्रोत्रं प्रपद्ये । वागोजः सहौजो मयि प्राणापानौ ।। (यजु० ३६/१

३—ॐ यन्मे छिद्रं चक्षुषो हृदयस्य मनसो वाति तृण्णं बृहस्पतिर्म्मे तद्दधातु । शन्नो भवतु भुवनस्य यस्पतिः ।। (यजु० ३६/२)

४—ॐ (गायत्री-मन्त्र)

(ग) 'कात्यायन, दक्ष एवं व्यास-स्मृतियां और मलमासतत्त्व'-कार के अनुसार १०८ बार गायत्री जप करके सन्ध्या करने से भी काललोपजनित प्रत्यवाय नहीं होता है।

२—पञ्चकालोचित गायत्री ध्यान

(क) प्रातः —ब्रह्माणी चतुराननाऽक्षवलयं कुम्भं करैः स्रुक्स्रुवौ,
बिभ्राणारुणकान्तिरिन्दुवदना ऋग्रूपिणी बालिका ।
हंसारोहण-केलिरम्बरमणेर्बिम्बाश्रिता भूतिदा,
गायत्री हृदि भाविता भवतु नः सम्पत्समृद्धयै सदा ।।१।।

(ख) मध्याह्ने —रुद्राणी नवयौवना त्रिनयना वैयाघ्रचर्माम्बरा,
खट्वाङ्गत्रिशिखाक्षसूत्रवलयाभीतिं दधानाऽम्बिका ।
विद्युत्पुञ्जजटाकलापविलसद्बालेन्दुमौलिः सदा,
सावित्री वृषवाहना सिततनुर्ध्येया यजूरूपिणी ।।२।।

(ग) सायाह्ने —वृद्धा नीलघनप्रभापरिलसत्पीताम्बराभूषिता,
दिव्यैराभरणैरथाङ्गकमले शङ्खं गदां बिभ्रती ।
तार्क्ष्य-स्कन्धगता समस्तजगदाराध्या परा वैष्णवी,
ध्येया सैव सरस्वती भगवती सायं स्वरूपा परा ।।३।।

(घ) तुरीयाकाले —मुक्ताविद्रुमहेमनीलधवलच्छायैर्मुखैस्त्रीक्षणै—
(अनाख्यायाम्) युक्तामिन्दुनिबद्ध-रत्नमुकुटां तत्त्वात्मवर्णात्मिकाम् ।
गायत्रीं वरदाभयाङ्कुशकशाः शुभ्रं कपालं गुणं,
शङ्खं चक्रमथारविन्दयुगलं हस्तैर्वहन्तीं भजे ।।४।।

(ङ) भासाकाले —ॐ अधिलोकं यस्य पादौ यस्याधि ज्योतिषं मुखम् ।
अधिविध्यं पक्षयुगं यस्य पक्षमधि प्रभु ।।

अधिदेवं यस्य गृहं देहं यस्याधिभौतिकम् ।
यस्याः स्वरूपमध्यात्मं तत्स्वरूपं विचिन्तये ।।

ॐ मूर्ध्नि सङ्घाते ब्रह्मा विष्णुर्ललाटे रुद्रो भ्रूमध्ये चक्षुषोश्चन्द्रादित्यौ कर्णयोः शुक्रबृहस्पती नासिके वायुदैवत्यं प्रभातं दोषा उभे सन्ध्ये मुखमग्निर्जिह्वा सरस्वती ग्रीवायां स्वाध्यायाः स्तनयोर्वसवो बाह्वोर्मरुतो हृदयं पर्जन्यमाकाशमपरं नाभिरन्तरिक्षं कटिरिन्द्रियाणि जघनं प्राजापत्यं कैलासमलयावूरू विश्वेदेवा जानुभ्यां जान्वोः कुशिकौ जङ्घयोरयनद्वयं खुराः पितरः पादौ पृथिवी वनस्पतिर्गुल्फौ रोमाणि मुहूर्तास्ते विग्रहाः केतु-मासर्तवः सन्ध्याकाल-त्रयाच्छादनं संवत्सरो निमिषोऽहोरात्रादित्यश्चन्द्रमाः ।

सहस्रपरमां देवीं शतमध्यां दशापराम् ।
सहस्रनेत्रीं देवीं गायत्रीं शरणमहं प्रपद्ये ।। ॐ नमः ।

गायत्री और गुह्य-तन्त्र

"शारदातिलक'-के २१ वें पटल में गायत्री-मन्त्र द्वारा विविध तान्त्रिक साधनाओं—जैसे कि-'ग्रह-शान्ति के लिये क्षीरवृक्षों की समिधा द्वारा हवन, सर्वदोष शान्ति के लिये जल द्वारा तर्पण, अभिचार शान्ति के लिये पञ्चगव्य के साथ समिधाओं का हवन, पृथ्वी में गड्ढा खोद कर उसमें त्रिशूल और मन्त्र लिखकर गाड़ने से सर्वविध शान्ति, अभिषेक, स्मृतिवृद्धि, रोग-निवारण, ज्वरनाशन, धनप्राप्ति, मारण, मोहन, उच्चाटनादि'—के प्रयोगों के विस्तृत विधान मिलते हैं। इसी प्रकार अन्य तन्त्रग्रन्थ भी ऐसे ही अनेक विधानों का उल्लेख करते हैं।

उपसंहार

गायत्री मन्त्र की महिमा का जिसने अनुभव किया है उन महापुरुषों में पं० मदन मोहन मालवीय, स्वामी विवेकानन्द, लोकमान्य तिलक, स्वामी दयानन्द सरस्वती, स्वामी रामतीर्थ, योगी अरविन्द आदि प्रथम कोटि में आते है। पं० मदनमोहन मालवीय ने विश्वविख्यात हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना से पूर्व चौबीस लक्ष गायत्री का पुरश्चरण करवाया था, जिसके फलस्वरूप आज उसकी महत्ता सर्वत्र व्याप्त है, यह किसी से छिपा नहीं है। तात्पर्य यह कि गायत्रीं-मन्त्र परम-पवित्र और अखिल आगम-निगमों का सार है। प्रत्येक द्विजाति को इसकी उपासना अवश्य करनी चाहिये।

J I 3

निगमागम-सम्मत पञ्चकाल-सन्ध्या
एक : विश्लेषण :

—डा० रुद्रदेव त्रिपाठी, आचार्यः

निगमागम-सङ्क्लृप्त-समुन्नत-महीरुहम् ।
शिवशक्त्यात्मकं छायायुक्तं वन्दे जगत्त्रयम् ।।

श्रीमन्नेपालदेशे परम-दृढतया शास्त्रसन्धान-लीनाः,
स्थित्वा ये षोडशाब्दान् श्रुतिततिसहितानागमान् वीक्ष्य तत्त्वम् ।
सान्ध्यं साध्यं च सूक्ष्मं किमपि करुणयाऽदर्शयन् श्रेयसे मां,
'विद्यारण्या'भिधाँस्तान् गुरुवरचरणान् नौमि 'रुद्रः' स-मुद्रः ।।

"निगम, आगम और सन्ध्या"

'निगम' शब्द का अर्थ है—**'वेद'**। वेद का ही अन्य पर्याय **'श्रुति'** कहलाता है। **'विद्-ज्ञाने, विद्-सत्तायां, विद्लृ-लाभे और विद्-विचारणे'** इन चार धातुओं से निष्पन्न वेद शब्द **ज्ञान**, सत्ता, लाभ और विचार-रूप अर्थों का बोधक बतलाया गया है।[1] इन शास्त्रीय अर्थों में से 'वेद' का **'ज्ञान'** अर्थ ही सर्वाधिक मान्य है क्योंकि ज्ञानार्थक 'वेद' शब्द से समस्त ज्ञानराशि का बोध होता है, जोकि वेदों में निहित है। यह ज्ञान ईश्वरीय है जिसे ऋषि-महर्षियों ने मन्त्ररूप में देखा है। ऋषियों ने योगबल एवं तपोबल से वेदों का दर्शन किया है। इसी लिये वेदोक्त 'मन्त्र'[2] ईश्वरीय आदेशरूप हैं। **'मन्त्र-ब्राह्मणयोर्वेद नामधेयम्'** के अनुसार वेद-शब्द के अन्तर्गत ब्राह्मण-ग्रन्थों का भी समावेश हुआ है और आगे चलकर **'गोपथ-ब्राह्मण'** (१।१०) के अनुसार वेद-शब्द वैदिक-वाङ्मय के अर्थ का भी प्रतिपादक माना गया। प्रत्येक सनातन-धर्मानुयायी के लिये वेदोक्तकर्म ईश्वरादिष्ट होने के कारण मान्य हैं और उन कर्मों में **'सन्ध्या-विधान'** भी सङ्केततः प्राप्त है।

---

१. द्रष्टव्य—'तैत्तिरीयसंहिता' १।४२०; तथा 'तैत्तिरीयब्राह्मण' ३।३।६।६६।; आपस्तम्ब गृह्यसूत्र १।३३ आदि।

२. मन्त्र शब्द की व्युत्पत्ति (१) दिवादि गण के मनु-अवबोधने से 'मन्यते-ज्ञायते ईश्वरादेशः अनेन इति मन्त्रः, (२) तनादि गण के मन-विचारे धातु से मन्यते विचार्यते ईश्वरादेशो येन सः मन्त्रः तथा (३) तनादिगण के मन-सत्कारे धातु से—मन्यते सत्क्रियते देवताविशेषोऽनेन इति मन्त्रः मान्य हैं।

जैसे समस्त विद्याओं का मूल वेदों में उपलब्ध होता है उसी प्रकार सन्ध्या का मूल भी वेदों में उपलब्ध है। किन्तु 'ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद्' तत्तद्विषयक वैदिक सङ्केतों का व्याख्यान करके एक निश्चित दिशा का निर्देश करते रहे हैं। ज्ञान के साथ ही विज्ञान भी आवश्यक होता है, अतः सन्ध्या की विज्ञान-प्रक्रिया केवल सङ्केत-साध्य नहीं रही अपितु उसकी अद्भुत फलवत्ता का ज्ञान होनेपर भी प्रक्रियात्मक-विज्ञान की अपेक्षा बनी ही रही इस अपेक्षा की पूर्ति कुछ अंशों में स्मृतिकारों ने पूर्ण की तथापि पुस्तकीय ज्ञान के साथ ही प्रयोगात्मक ज्ञान के लिये आगमों का आलम्बन लिया गया। आगमों ने देवता की अपेक्षा देवता की '**अधिष्ठात्री शक्ति**' को महत्त्व दिया और उस शक्ति के बिना '**शिव को शवरूप** बतला कर शक्ति की उपासना के द्वार उद्घाटित किये। इसीलिये '**आगम**' भी '**निगम**' के समान ही सम्माननीय हुए।

वैसे भी '**कृते श्रुत्युक्त आचारः**' से आरम्भ कर '**कलावागम-सम्मतः**,' कहकर शास्त्रों ने आगमों की महत्ता प्रतिपादित की है। फलतः सभी उपासना-विधान '**निगमागम-सम्मत**' निर्देशों के अनुसार स्वीकृत हुए। 'सन्ध्योपासना' सर्वविध-उपासनाओं का मूल एवं अनिवार्य कर्म होने के कारण आगमों में पर्याप्त वर्णित है। वहीं यह भी निर्दिष्ट है कि '**वैदिक सन्ध्या**' करके '**तान्त्रिक-सन्ध्या**' करे। इससे यह भी मान लिया जाता है कि आगमानुमोदित सन्ध्याविधि वैदिक-सन्ध्या से पृथक् है, किन्तु वस्तुतः ऐसा नहीं है। जिस तान्त्रिक-सन्ध्या के लिए आगमों का निर्देश है, वह विशिष्ट दीक्षाप्राप्त साधकों के इष्टदेवता की साधना में करणीय सन्ध्या का है, सर्वसामान्य का नहीं।

'**निगम**' शिवरूप है सौर '**आगम**' शक्तिरूप है। अतः शिवशक्त्यात्मक शास्त्रों के अनुसार ही हमारी उपासना होनी चाहिये। एक में दूसरी के बिना पूर्णता नहीं आती। परस्पर-सापेक्ष एवं परिपूरक निगम और आगम द्वारा दर्शित मार्ग का अनुसरण ही हमारे लिये श्रेयस्कर है। किसी भी देवता की उपासना में उस ही अपरिमेय शक्ति का प्रभाव ही उसके प्रति भक्ति-जागरण का कारण बनता है, उसकी दुरितोपद्रवनाशिनी एवं सर्वार्थसाधिनी शक्ति को ही साधक अपनी कामनाओं की पूर्ति का एकमात्र साधन मानकर उसकी उपासना में प्रवृत्त होता है तथा विधिवत् कर्म करता हुआ यथेच्छ लाभ भी प्राप्त करता है। इसी दृष्टि से '**निगमागम-सम्मत-सन्ध्या-विधि**' का अनुसरण भी आवश्यक माना गया है।

भारतीय आस्तिक-समाज की उपासना-प्रवृत्ति की मूलभित्ति '**सन्ध्या**' है। द्विजमात्र के लिये सन्ध्या करने का विधान प्राचीन महर्षियों ने धर्मशास्त्र, स्मृति और पुराणों में प्रतिपादित किया है। सन्ध्या के आधार पर ही अन्य सभी देवों की उपासना के द्वार खुलते हैं। यद्यपि 'सं' उपसर्गक 'ध्यै'-धातु से निष्पन्न सन्ध्या-शब्द सामान्यतः 'सम्यक् ध्यान' के अर्थ का ही परिज्ञान कराता है, तथापि यही शब्द अपने आप में अनेक रहस्यार्थों को छिपाये हुए है, यह हम विशेष गवेषणा एवं चिन्तन के द्वारा ज्ञात कर सकते हैं।

हजारों वर्षों की सुदीर्घ-परम्परा से चली आई 'सन्ध्योपासना-प्रक्रिया' के कारण 'सन्ध्या'

स्वयं उपास्या बन गई है।[1] सन्ध्या के माहात्म्य का वर्णन सभी शास्त्रों में किया गया है। उनमें भी मुख्यतः हमारे दैनन्दिन आचार एवं कर्तव्य-कर्मों का निर्देश धर्मशास्त्र के अधीन होने से धर्मशास्त्र एवं स्मृतियों ने सन्ध्योपासना की जो नितान्त आवश्यकता प्रतिपादित की है, उसका पालन द्विजमात्र के लिये राजाज्ञावत् अनिवार्य है। **"लोगाक्षि-स्मृति"** में कहा गया है कि—

सन्ध्यामूलमिद सर्वं ब्राह्मण्यं सर्वदेहिनाम्।
वन्दनीयं प्रार्थनीयं पूजनीयं प्रयत्नतः॥
सेव्यं च दर्शनीयं च सन्ध्ययैतत्तु सम्पदः।
ब्राह्मण्यं ब्राह्मणानां सन्ध्ययैव न चान्यथा॥

और वहीं अन्यत्र यह भी कहा गया है कि 'सभी महर्षियों के पूज्यत्व का मूलकारण सन्ध्या ही है।' यथा—

सप्तर्षयः काश्यपाद्या नारदाद्याः सुरर्षयः।
सनकाद्याश्च योगीन्द्राः सर्वलोकोत्तमोत्तमाः॥
अकर्तुमन्यथा कर्तुं चापि कर्तुं जगद्वशे।
चराचर-सुरासुरमिलितं शक्तिमत्तराः॥

इसके अतिरिक्त भी ऐसे सहस्रों प्रमाण सन्ध्या के विषय में पूर्वमहर्षियों ने कहे हैं, जिनसे सन्ध्योपासना की अत्यावश्यकता व्यक्त होती है।

'सन्ध्या' की परिभाषा तथा अन्य विचार

'षड्विंशब्राह्मण' के प्रपाठक ४, खण्ड ५ में कहा गया है कि—

"तस्माद् ब्राह्मणोऽहोरात्रस्य योगे सन्ध्यामुपासीत।

तथा— **'सज्योतिषा ज्योतिषो दर्शनात् सोऽत्रास्याः कालः सा सन्ध्या तत्सन्ध्यायाः सन्ध्यात्वम्'**

'आश्वलायन गृह्य-परिशिष्ट' में भी **'अथ सन्ध्यामुपासीतेत्याचार्यो यावदहोरात्रयोः सन्धी यश्च पूर्वाह्लापराह्णयोस्तत्कालभवा देवता सन्ध्या तामुपासीत'** कहकर सन्ध्या के काल और देवतात्व का निर्देश किया है। इन सन्धिकालों में प्राणिमात्र की इडा-पिङ्गला नाडियों की गति भी सन्धि को प्राप्त हो जाती है; अतः ब्रह्मोपासना का यही समय प्रकृति द्वारा निर्धारित है। मनुष्येतर प्राणी इस समय जल भी नहीं पीते अपि तु प्रकृति द्वारा प्रस्तुत इस समता में स्थित भी होते हैं अन्यत्र सन्ध्या की परिभाषा देते हुए कहा गया है कि—

मन्त्राणां चैव देवानां ब्रह्मादीनां च सङ्गमः।
सन्धिः सर्वासुराणाञ्च तेन सन्ध्या ह्युदाहृता॥

---

१. **"त्वमेव सन्ध्या सावित्री त्वं देवी जननी परा"** (दुर्गासप्तशती में रात्रिसूक्त)। इसी प्रकार विभिन्न देवियों की-सहस्रनामावली में भी देवियों के नाम 'सन्ध्या' कहे गये हैं।

अर्थात् मन्त्र, देव, ब्रह्म आदि का राङ्गम तथा सर्व असुरों की सन्धि होने से इसे सन्ध्या कहते हैं।

शास्त्रकारों ने सन्ध्या के ऐसे ही महत्त्व को स्वीकार करते हुए सन्ध्याकर्म करने के लिये स्थान, दिशा, सन्ध्योपयोगी जलपात्र एवं अन्यान्य विभिन्न विषयों का बहुत ही गम्भीरता से विचार किया है जिसका अनुशीलन मुख्यतः—'लघुव्यास-संहिता, वसिष्ठ, हारीत, अत्रि, याज्ञवल्क्य, शङ्ख आदि की स्मृतियों से और विश्वामित्रकल्प, धर्मसार, प्रमाणमण्डन आदि ग्रन्थों से करना चाहिये।

सन्ध्या करने से लाभ

शास्त्रों में सन्ध्याकर्म नहीं करने से होनेवाले पाप अथवा प्रत्यवाय का तो वर्णन हुआ है किन्तु सन्ध्या-कर्म करने से मिलनेवाले फल का कहीं उल्लेख नहीं मिलता है, ऐसी स्थिति में सन्ध्या-कर्म करने से क्या लाभ है? यह प्रश्न उठता है। इसका समाधान देते हुए शास्त्रकारों ने कहा है कि—"इसका फल वर्णन इसलिए नहीं किया गया है कि इसका फल है—अन्तः-करण शुद्धिपूर्वक ज्ञान-प्राप्ति होने पर मोक्षलाभ; और इसका प्रमाण है यह ऋग्वेद में पठित मन्त्र —

अयं स होता यो द्विजन्मा विश्वा दधे वार्य्याणि श्रवस्या।
भर्तो यो अस्मै सुतुको ददाश ॥१।१४९।५॥

अर्थात् जो उपनयन संस्कारसम्पन्न प्रतिदिन शास्त्रविधि से सन्ध्या एवं गायत्रीजप के द्वारा जगद्गुरु ईश्वर का ध्यान करता है, वह यशस्कर लौकिक फलों को भोगता है। तथा 'वह यथा-शास्त्र विधि का परिपालन करने से ईश्वर का सुपुत्र होता है अतः परमात्मा उसे मोक्ष प्रदान करता है।'[1] इसके अतिरिक्त यह भी स्मरणीय है कि—"सन्ध्याकर्म सामान्य लौकिक फलों से भी अधिक महत्त्वपूर्ण अलौकिक फल देनेवाला है जिससे जगद्गुरु परब्रह्म परमेश्वर प्रसन्न होते हैं। और परमेश्वर के प्रसन्न होने पर संसार में ऐसी कौन-सी वस्तु है जो मनुष्य के लिए दुर्लभ हो?" इसी लिये **'तैत्तिरीय आरण्यक'** ने यह उद्घोष किया है कि—

उद्यन्तमस्तं यन्तमादित्यमभिध्यायन् कुर्वन्
ब्राह्मणो विद्वान् सकलं भद्रमश्नुते ॥ इति ॥ (२।२।२)

अतः लाभ की आकांक्षा छोड़कर सांसारिक अर्थकामना-रहित निरन्तर उन्मीलित विवेकचक्षुओं से शास्त्रविधि के परिपालनरूप उद्देश्य को सामने रखकर सन्ध्याकर्म करने का आदेश शास्त्रों ने दिया है, जो कि सर्वथा पालनीय है। महर्षि याज्ञवल्क्य ने तो स्पष्ट कहा है कि 'इस पृथ्वी पर जितने भी द्विज विकर्म (कर्तव्य कर्मों से रहित कर्मों) में लगे हुए हैं उनको पवित्र करने के लिए ही ब्रह्माजी ने 'सन्ध्या' की सृष्टि की है।'[2]

---

१. "वैदिकसन्ध्या, वैदिकभाष्यम्"-पृष्ठ ६-७, पं० स्वामी हरिदास वैदिकमुनि।

२. **यावन्तोऽस्यां पृथिव्यां हि विकर्मस्थास्तु वै द्विजाः।**
तेषां वै पावनार्थाय सन्ध्या सृष्टा स्वयम्भुवा ॥ —याज्ञवल्क्यस्मृति

सन्ध्योपासना की प्राचीन परम्परा

'सन्ध्या-दर्पण'कार कूर्माचलीय पण्डित देवीदत्त ज्योतिर्विद् ने **'सन्ध्योपयोगी-संग्रह'** नामक उक्त ग्रन्थ के पूर्वभाग में सन्ध्या की ऐतिहासिकता की शास्त्रीय परम्परा का अनुसन्धान किया है। उससे कुछ अंशों में सन्ध्यागत प्राचीनता का आभास प्राप्त होता है, अतः हम संक्षेप में यहां उसका निदर्शन प्रस्तुत कर रहे हैं —

१. **वेद एवं वैदिक वाङ्मय में**— ध्यान एवं मन्त्रजप के सङ्केत के साथ ही **'दिवे दिवे'** तथा **'दोषावस्तः'** (ऋ० १।१।७) के अनुसार प्रतिदिन रात्रि और दिन के सन्धि कालों का भी निर्देश मिलता है। किन्तु यह केवल जप का निर्देश है। जब कि **'तैत्तिरीय ब्राह्मण'** में **'उद्यन्तमस्तं यन्तमादित्यमभिध्यायन् कुर्वन् ब्राह्मणो विद्वान् सकलं भद्रमश्नुते'** कहते हुए वहीं सन्ध्या का **विवेचन** और सूर्यार्घ्यदान-सम्बन्धी कथा का भी उल्लेख हुआ है।[1]

२. **गृह्य एवं श्रौतसूत्रों में**— वैदिक-वाङ्मयानुसार ही सूत्रकाल में सन्ध्या एवं तदङ्गभूत कर्मों का संक्षिप्त उल्लेख मिलता है किन्तु क्रमशः उसमें विशदता आने लगी। यथा —(१) **सांख्यायन**—तैत्तिरीयब्राह्मणवत् (२) **आश्वलायन**— यज्ञोपवीत धारण, प्रोक्षण, सन्ध्याकाल एवं सन्ध्योपयोगी दिशा का निर्देश करते हैं। (३) **कात्यायन** — प्राणायाम, अर्घ्यदान और उपस्थान का वर्णन करते हैं।[2]

३. **धर्मसूत्रों में**—(१) **आपस्तम्ब**— प्रातः और सायं गांव से बाहर यतवाक् होकर सन्ध्या करने का आदेश करते हैं। (२) **गौतम** भी इन्हीं का अनुकरण करते हैं। (३) **वसिष्ठ** ने मध्याह्न-सन्ध्या का उल्लेख किया है। (४) **बोधायन** ने इस विषय को और भी विस्तार से व्यक्त करते हुए कहा है कि—अशुद्ध रहने पर यदि स्नान नहीं किया जा सके तो हाथ पैर धोकर ही आचमन, मार्जन, गायत्रीजप तथा उपस्थान करे और इसी के साथ वे दिशाओं की मन्त्र-सङ्केत-पूर्वक व्यवस्था देते हैं।

४. **धर्मशास्त्रों में**— (१) **मनु**— वेदों के समान ही केवल जप का उल्लेख करते हैं। (२) **याज्ञवल्क्य**— प्राणायाम, प्रोक्षण तथा उपस्थान का भी समावेश करते हैं। (३) **अत्रि**— सन्ध्योपासना को तीनों कालों में विधेय बतलाते हुए आवश्यक कर्तव्य का निर्देश देते हैं। (४) **व्यास**— ध्यान एवं अर्घ्यदान पर प्रकाश डालते हैं तथा अङ्गन्यास भी बतलाते हैं। (५) **प्रजापति**— अघमर्षण का विशेष संकेत देते हैं। (६) **नारायण**— मन्त्राचमन और उसके मन्त्र 'सूर्यश्च मा०' का विशिष्ट निर्देश करते हैं। तथा (७-८) **पितामह** और **भारद्वाज**—

---

१. **देवाश्चासुराश्चास्पर्धन्त, ते सुरा आदित्यमभिद्रवन्, स आदित्यो बिभेत, तस्य हृदयं रूपेणातिष्ठत्, स प्रजापतिमुपधावत्, तस्य प्रजापतिरेतद् भेदमपश्यत् ऋतञ्च सत्यञ्च ब्रह्म चोङ्कारं च त्रिपदां गायत्रीं ब्रह्मणो मुखमपश्यत् सज्योतिषो ज्योतिषो दर्शनात् सोऽस्य सन्ध्याकालः सा सन्ध्या तच्चेह सन्ध्यायाः सन्ध्यात्वं यत्सायमासन्नः सन्ध्यामुपास्ते।** (तैत्तिरीय-ब्राह्मण)

२. **'आपस्तम्ब श्रौतसूत्र'** सन्ध्या के बारे में मौन रहा।

मन्त्रों के ऋषि, छन्द एवं देवता का विधान तथा सन्ध्या का आवाहन-विसर्जन भी दिखलाते हैं।

५. पुराण तथा **उपपुराणों में**—सन्ध्या की महत्ता, सन्ध्या-सम्बन्धी कथा एवं सन्ध्या-विधि में कर्तव्यकर्मों का बहुधा' विवेचन हुआ है। कूर्मपुराण में 'सङ्कल्प' का भी निर्देश है। अनेकविध स्तोत्र एवं कवच भी प्राप्त होते हैं।

६. तन्त्रशास्त्रों में— सन्ध्यावन्दन की समुचित व्यवस्था एवं जपविधि में विनियोग, न्यास-ध्यान आदि का विधान भी दिया गया है। मुद्रा, अङ्ग-प्रत्यङ्ग में जपनीय मन्त्र, अस्त्रमन्त्र, उपसंहारमन्त्र भी हमें तन्त्र ही बतलाते हैं।

इस प्रकार वेद-वेदाङ्गानुमोदित सन्ध्या की व्यवस्थित पद्धति का पूर्वरूप सूत्रकाल तक संक्षिप्त ही चला किन्तु उत्तरकाल के धर्मशास्त्र प्रयोजक महर्षियों ने कलिकाल की निकटता को ध्यान में रखते हुए तथा उतने संक्षिप्त विधान को ही पर्याप्त न मानकर कलियुग के साधकों को भी पूर्ववत् सिद्धि प्राप्त हो; इस शुभ-भावना से **'निगम'** और **'आगम'** दोनों से सम्मत सन्ध्या की पद्धति का निर्देश किया।

सन्ध्या-पद्धति की अनेकरूपता

श्रौत एवं स्मार्त प्रमाणों के आधार पर पूर्वमहर्षियों ने सन्ध्या-पद्धति के निर्धारण में अनेकरूपता ही प्रदर्शित की है। स्मृतिकारों द्वारा वर्णित सन्ध्या-सम्बन्धी विधानों में प्रायः पाराशर ने सन्ध्यागत कुछ विशेष विचार प्रस्तुत किये हैं, किन्तु उनमें भी जपादि विषयों का ही अधिक विस्तार है। कर्मकाण्डीय-पद्धतिकारों ने वेद, स्मृति एवं आगमोक्त प्रक्रियाओं का समीक्षण तथा औचित्य-चिन्तन करके जिस व्यवस्थित अनुष्ठान-पद्धति का सङ्कलन किया उससे भी सन्ध्या-विधि का परिष्कार होता रहा है।

वेदों के शाखाभेद एवं वर्णभेद से सन्ध्या की विभिन्नता का सङ्केत भी धर्मशास्त्रकारों ने दिया है। शास्त्रकारों का आदेश है कि प्रत्येक शाखाध्यायी अपनी-अपनी शाखा के अनुसार सन्ध्योपासना करे। इस दृष्टि से चारों वेदों की शाखाओं में दर्शित सन्ध्यापद्धतियां कतिपय शाखोक्त मन्त्र एवं तत्सम्बद्ध विधानों के कारण न्यूनाधिक रूप में भिन्न-भिन्न हो जाती हैं। 'धर्मसिन्धु' में ऋक्-शाखा की १- बह्वृच, २- तैत्तिरीय तथा ३- कात्यायन की तीन सन्ध्याओं का वर्णन किया गया है। इनमें प्राणायाम और गायत्रीमन्त्र समान हैं किन्तु मार्जन, ध्यान तथा उपस्थानों में भेद है। यजुर्वेदानुगत शुक्ल एवं कृष्ण भेद से दो सन्ध्याएं हैं। सामवेदानुयायियों और अथर्ववेदानुयायियों की शाखानुसारी सन्ध्या-विधियां भी उपलब्ध होती हैं। आचारादर्श, स्नानदीपिका, आह्निक,-सूत्रावली, बृहत्पाराशरसंहिता एवं अनेक स्मृतियों में मन्त्रसङ्केत सहित सन्ध्याङ्गभूत कर्मों का विधिवत् निर्देश प्राप्त होता है।

निगमोक्त सन्ध्याविधि के समर्थक आचार्य आगमोक्त सन्ध्या-विधि को 'तान्त्रिक-सन्ध्या' के रूप में स्वतन्त्र विधेय कर्म मानकर 'वैदिक-सन्ध्या-विधि' के अनुपालन का आदेश देते हैं और यत्र-तत्र आगमानुसारी न्यासादि विधियों को अवैदिक कहकर उनका निषेध करते

हैं, जब कि कुछ आचार्य विस्तार-भय से बचकर 'कृताकृत' कहकर तटस्थभाव को व्यक्त करते हैं। साथ ही कुछ आचार्य सन्ध्या को संक्षिप्त रखने का कारण—'(१) अग्निहोत्र आदि कर्मों का यथाकाल-सम्पादन अथवा (२) अग्रिम आगमोक्त कर्मों के सम्पादन में पुनरावृत्ति' को भी मानते हैं।

उत्तरकाल के आचार्यों ने सन्ध्या-विधि को आवश्यक मानते हुए भी स्व-स्वसम्प्रदायानुमत देव एवं मन्त्रों का भी सन्ध्या में समावेश किया है तथा स्वमतानुसार ही न्यूनाधिकता लाकर विभिन्न विधियों का निर्माण किया है। इस प्रवृत्ति के कारण जहां अतिव्यस्त, व्यवसायी अथवा नौकरी आदि में लगे हुए व्यक्तियों के लिये 'अकरणान्मन्दकरणं वरं' न्याय से सुगम मार्ग निकला है वहीं सैंकड़ों वर्षों की अस्थिरता के कारण हम मूल से बहुत दूर भी चले गये हैं, यह अवश्य ही चिन्ता का विषय है।

सन्ध्या-विषयक एक अपूर्व दिग्दर्शन

हम विभिन्न शास्त्रों में सन्ध्या की अनिवार्यता एवं उसके महत्त्व के बारे में पढ़ते आये हैं। विशेषतः ब्राह्मण-बालकों को 'सन्ध्या' करने का आदेश और उपदेश माता, पिता, गुरु एवं गुरुजन करते ही रहे हैं तथा सन्ध्या और गायत्रीजप में निरन्तर संलग्न पूर्वपुरुषों के सुखी एवं सम्पन्न जीवन की कथाएं भी बहुधा सुनते रहे हैं। ऋषि-महर्षियों की दीर्घ सन्ध्योपासना ही उनके दीर्घ आयुष्य, आरोग्य, प्रभावशालिता, मेधाविता आदि की प्रामाणिक उपलब्धि रही है। इन पंक्तियों के लेखक ने कुछ वर्ष-पूर्व **तपोनिष्ठ, तन्त्रशास्त्रनिष्णात, निगमागममर्मज्ञ** पूज्य स्वामी **श्री १००८ विद्यारण्यजी**—(प्रसिद्धनाम-श्रीमूर्खारण्य स्वामीजी) महाराज के सांनिध्य में **'यति-दण्डैश्वर्य-विधान'** ग्रन्थ का सम्पादन करते हुए जिज्ञासावश निवेदन किया कि—"वह 'सन्ध्या-विधि' कौनसी है, जिसका प्राचीन महर्षिगण प्रयोग किया करते थे? वशिष्ठ, विश्वामित्र और गौतम आदि के द्वारा किस सन्ध्या-विधि का प्रयोग होता था? और आजकल जिन सन्ध्या-पद्धतियों का हम अनुसरण करते हैं उनमें क्या-क्या न्यूनताएं हैं?"

—इन प्रश्नों को ध्यान में रखकर पूज्य श्री ने कहा कि—"उस काल की 'सन्ध्याविधि' अतिविस्तृत थी, वह केवल निगम-वेद पर अथवा वैदिक स्मृत्यादि-शास्त्रों पर ही अवलम्बित न रहकर आगम-दर्शित मार्ग का भी अनुवर्तन करती थी। कलियुग में आगमोक्त विधानों की प्रधानता से ही इष्टलाभ होता है। केवल श्रौतकर्म भी आगमों की प्रक्रिया के बिना परिपूर्ण नहीं होते। आसन, आचमन, प्राणायाम, आवाहन, उपस्थान, जपविधि, मुद्रा-प्रदर्शन आदि उपासनाङ्गभूत क्रियाएँ आगम ही बतलाते हैं तथा सभी सिद्धमहर्षियों के द्वारा वर्णित संहिता-ग्रन्थों में भी ऐसी सन्ध्या-विधियों के निर्देश मिलते हैं।" आदि।

उनकी जनकल्याणाभिमुखी करुणादृष्टि के कारण यह विषय प्रश्नोत्तर रूप में कई वर्षों तक प्रासङ्गिक रूप से चलता रहा और उन्हीं के निर्देशन में **'पञ्चकालसन्ध्या-विधि'** का सङ्कलन भी लेखक के द्वारा हुआ। खेद है कि विभिन्न बाधाओं के कारण इस सन्ध्या का उनकी अभिरुचि के अनुरूप प्रकाशन नहीं हो सका और वे दिव्यलोक को सिधार गये।

उनकी उपस्थिति में 'पञ्चकाल-सन्ध्या-विधि' के प्रकाशन की योजनाएँ भी बनीं तथा यत्र-तत्र कुछ अंश टंकित करके प्रसारित भी किये गये, किन्तु इसका पूर्णरूप प्रकाशित नहीं हो पाया। अब भी माँ गायत्री की कब कृपा होगी? यह कहा नहीं जा सकता। अतः प्रस्तुत लेख में एक सूची के रूप में ही उसका प्रकाशन करना आवश्यक समझ कर कुछ लिखने का प्रयास किया है।

पञ्चकाल-विचार

अहोरात्र का काल-विभाजन आगमों में पांच प्रकार से किया गया है, जिनमें क्रमशः **१- प्रातःकाल, २- मध्याह्न, ३- सायाह्न, ४- तुरीयकाल** (अर्धरात्रि से पूर्व) तथा **५- पञ्चम-काल,** (रात्रि के १२ बजे से ४ बजे तक) का समयानुसारी विभाजन है। आगमिक शब्दों में इन्हीं को **१- सृष्टि, २- स्थिति, ३- संहार,** ४- अनाख्या तथा **५- भासा** काल कहा जाता है। इन्हीं कालों में साधकवर्ग को साधना से पूर्व 'सन्ध्या' करने का उपदेश एवं उसके विधानों का भी आगमों में बहुशः निर्देश किया है। इन सन्ध्याओं में सन्ध्या की अधिष्ठात्री देवियां इस प्रकार हैं—

क्रम	काल	अधिष्ठात्री देवी	वेद
१-	सृष्टिरूपा प्रातः सन्ध्या	ब्रह्माणी	ऋग्०
२-	स्थितिरूपा मध्याह्न सन्ध्या	वैष्णवी	यजुः०
३-	संहाररूपा सायंसन्ध्या	सरस्वती	साम०
४-	तुरीयारूपा अनाख्या सन्ध्या	गायत्री पञ्चमुखी	अथर्व०
५-	पञ्चमीरूपा भासा सन्ध्या	गायत्री विराड्रूपा	सर्ववेदसमष्टि (इतिहास-पुराणयुता)

ये पांचों काल तन्त्र-शास्त्रों में काम्यकर्मों की भिन्न-भिन्न साधनाओं और आम्नायों के अनुसार भी कर्म-भेद का सूचन करते हैं। आचार्यों का कथन है कि—'सन्ध्या में काललोप का उतना दोष नहीं लगता जितना कि क्रियालोप करने से लगता है। अतः कारण अथवा परिस्थितिवश यदि कदाचित् समय में सम-विषम-स्थिति आ जाये तो उसमें निम्नलिखित-रूप से क्रिया करनी चाहिये—-

१- प्रातःकाल की सन्ध्या पूर्ण करने के पश्चात् साथ ही मध्याह्न सन्ध्या कर ले अथवा सायङ्काल में सायङ्कालीन सन्ध्या से पूर्व मध्याह्न सन्ध्या करके सायं सन्ध्या करे।

२- सायं सन्ध्या के पश्चात् साथ ही तुरीया सन्ध्या कर ले।

३- पञ्चमी सन्ध्या मध्यरात्रि में न हो सके तो ब्राह्ममुहूर्त में शय्याकृत्य से पूर्व कर ले।[1]

---

१. यह सामान्यतः निर्देश है। वैसे प्रयत्न यही रहना चाहिए कि यथासमय सभी कर्म किये जाएँ। हाँ, प्रारम्भ में अभ्यासी के लिये कोई विशेष बन्धन नहीं है।

प्रातः सन्ध्या-विधि-परिचय

इस काल की सन्ध्या का पूर्वाङ्ग **शय्याकृत्य एवं प्रातः-स्मरण'** से ही आरम्भ हो जाता है। साधक जैसे ही ब्राह्ममुहूर्त में निद्रा से उठता है तो वह १- चौरमन्त्र जप, २- कुलवृक्ष-वन्दना, ३- संसारयात्रानुवर्तनाभ्यर्थना, ४- करतलावलोकन, ५- गुरुपादुका-स्मरण—(क)-विनियोग, (ख)-ऋष्यादिन्यास, (ग)-करन्यास, (घ)-हृदयादि-न्यास, (ङ) ध्यान,[1] (च) मुद्रा, (छ) मन्त्र-जप और (ज) समर्पण, ६- कुण्डलिनी-मन्त्रजप (न्यासादिसहित), ७- अजपा-विधान (न्यासादि-सहित आत्मरूपध्यान, मानसपूजा और मूलाधार से सहस्रार-पर्यन्त समर्पण) तथा ८- गणेश, सूर्य, तुलसी, गौ, विष्णु, देवी, शिव, नवग्रह, ऋषि, पुण्यश्लोक पुरुष एवं स्वेष्ट-देवादि का प्रातःस्मरण करे। तदनन्तर प्रातःकृत्य में भूमिस्पर्शन से स्नानादि-पर्यन्त विधि का अनुसरण करके सन्ध्या-वन्दन के लिये आसन पर बैठे।

प्रातः सन्ध्या सब कालों में तथा सब कर्मों में प्रधान एवं अनिवार्य बतलाई गई है, क्योंकि इस सन्ध्या के करने के पश्चात् ही अन्यान्य साधनाओं का मार्ग प्रशस्त होता है। अतः इसमें संक्षिप्त, दीर्घ और प्रदीर्घ विधियों का निर्देश श्रुति एवं स्मृतिकारों ने किया है। आगमों में भी अनेक महत्त्वपूर्ण सङ्केत सन्ध्याविधि के लिए निर्दिष्ट हैं। जिनमें से **'निगम एवं आगम-सम्मत'** प्रातःसन्ध्या की विस्तृत **विधेय-कर्म-सूची** यहां प्रस्तुत कर रहे हैं —

१-श्री गुरुस्मरण, २- श्री गणपति-स्मरण, ३- आसन-विधि, ४-पृथ्वी-प्रोक्षण-पूर्वक आसन-पवित्रीकरण, ५- आचमन (विनियोगपूर्वक केशवनारायणादिनमोऽन्त), ६- कर्मारम्भ प्राणायाम (मातृका-वर्णों से), ७- कुशपवित्रधारण, ८- शिखाबन्धन (विनियोग सहित 'मान-स्तोके' तथा 'चिद्रूपिणी' से), ९-भस्म एवं सिन्दूर-तिलक धारण, १०-रुद्राक्षमाला धारण, ११- देहशुद्धि के लिये सविनियोग 'अपवित्रः पवित्रो वा' मन्त्र से पवित्रीकरण, १२- सन्ध्याङ्गभूत आचमन (गायत्रीमन्त्र द्वारा), १३- अनादिष्ट प्रायश्चित्तप्राणायाम (सप्तव्याहृति न्यास, अङ्गुलिपर्वों पर वर्णन्यास तथा दस अंगुलियों पर गायत्री दशपदन्यास पूर्वक), १४- एकादश प्रणव, सप्तव्याहृति एवं शिरोमन्त्र-पूर्वक गायत्रीमन्त्रात्मक तथा प्राणायामोत्तर त्रिव्याहृतिन्यास एवं गायत्रीचरणन्यास सहित, (क) कर्माधिकार प्राप्ति के लिए बीजमन्त्रजप, १५- कर्मसाक्षित्व के लिये प्रथम एक सूर्यार्घ्य, १६- सन्ध्या-सङ्कल्प, १७- इन्द्रिय-शुद्ध्यर्थ "ॐ विष्णुर्विष्णुः" से दशाङ्ग-स्पर्शन तथा 'भूरादिसप्तव्याहृति' एवं 'खं ब्रह्म' से अष्टाङ्गमार्जन, १८- भूशुद्धि (विघ्नकर्तृभूतापसारण तथा भैरवनमस्कारयुक्त), १९-भूतशुद्धि, २०- आत्म-प्रतिष्ठा, २१- अन्तर्मातृका-न्यास (सृष्टिक्रम से), २२- बहिर्मातृकान्यास (सृष्टिक्रम से) २३- गायत्र्यावाहन (गायत्रीं त्र्यक्षरां० से), २४- अम्बूपस्पर्शन (सूर्यश्च मा० मन्त्र से), २५- मार्जन (आपो हि ष्ठा० से), २६- जलावग्रहण (सुमित्रिया० से), २७- अघमर्षण एवं पापपुरुष-निरसन (द्रुप-दादिव० तथा ऋतं च सत्यं च० से), २८- आचमन (अन्तश्चरसि० द्वारा), २९- कालातिक्रम-

---

१. यहां **'गुरु-पादुकापञ्चकस्तोत्र'** एवं **'मानसोपचार-पूजा'** भी कर्तव्य हैं।

दोष-निवारणार्थ द्वितीयार्घ्य[१] (क- विनियोग, ख- ऋष्यादिन्यास, ग- करन्यास, घ- हृदयादिन्यास, ङ- ध्यानपूर्वक अर्घ्यदान), ३०- वायव्यास्त्र-मन्त्रद्वारा प्रणायाम तथा मन्त्राकर्षण, ३१- तृतीयार्घ्यदान (ब्रह्मास्त्र से सूर्यारिशस्त्रनाशन के लिए विनियोगादि-पूर्वक तथा सप्तमुद्रा[२]-प्रदर्शनसहित विलोम त्रिपादगायत्री मन्त्र द्वारा एक अर्घ्य देकर प्राणायाम एवं वायव्यास्त्र से मन्त्राकर्षण), ३२- चतुर्थ अर्घ्यदान (ब्रह्मदण्ड से सूर्यारिवाहन-विनाश के लिये विनियोगादि-पूर्वक तथा अष्टमुद्रा[३]-प्रदर्शन सहित चतुष्पाद विलोमगायत्री मन्त्रद्वारा अर्घ्य देकर पूर्ववत् प्राणायाम एवं मन्त्राकर्षण), ३३- पञ्चमार्घ्यदान (ब्रह्मशीर्ष से सूर्यारि-नाशन के लिये विनियोगादि-पूर्वक अष्टमुद्रा[४] दिखाकर त्रिव्याहृति, शिरोमन्त्र, तुरीयपाद तथा त्रिपदा गायत्री द्वारा अर्घ्य देकर पूर्ववत् प्राणायाम एवं मन्त्राकर्षण), ३४- षष्ठार्घ्यदान (ब्रह्मशिखा से सूर्यारिशस्त्र वाहन-नाशजनित दोषनिवृत्ति के लिये, विनियोगादिपूर्वक[५] मुद्रा-प्रदर्शनसहित सप्तव्याहृति, त्रिपदा-गायत्री, तुरीयपाद, शिरोमन्त्र एवं "अर्चयन्ति" मन्त्र अनुलोम-विलोम-द्वारा अर्घ्य देकर पूर्ववत् प्राणायाम एवं मन्त्राकर्षण), ३५- सप्तमार्घ्यदान (सूर्यनारायण की प्रसन्नता के लिये विनियोगादि सहित त्रिव्याहृति, त्रिपदा गायत्री, तुरीय एवं शिरोमन्त्र के साथ अर्चयन्ति० मन्त्र से अर्घ्य देकर पूर्ववत् प्राणायाम एवं मन्त्राकर्षण), ३६- अष्टमार्घ्यदान—(वैश्वदेवाकरण-प्रत्यवायशमन-पूर्वक सूर्यनारायण की प्रसन्नता के लिये 'आकृष्णेन०' मन्त्र से अर्घ्य देकर 'ॐ असावादित्यो ब्रह्म' इस मन्त्र से अपने चारों ओर जलाञ्जलि से प्राकार बनाये। तदनन्तर चतुर्वेदस्वरूपिणी गायत्री, सावित्री, सरस्वती और ब्रह्ममयी नामोच्चारणपूर्वक चतुष्पदा गायत्री के चार खण्डों से आचमन कर पूर्ववत् प्राणायामादि करे।)[६] ३७- सूर्योपस्थान (उद्वयमुदुत्यादि मन्त्र-चतुष्टय से), ३८- गायत्र्यन्तर्धारण (ब्रह्मतेज प्राप्ति के लिये), ३९- गायत्र्यावाहन (तेजोऽसि० द्वारा), ४०- गायत्र्युपस्थान, (गायत्र्यस्येकपदी० द्वारा), ४१- गायत्री-शापविमोचन-(ब्रह्म, वसिष्ठ, अगस्त्य, वरुण, विश्वामित्र, गौतम और सर्वशापादि), ४२- गायत्री जप-विनियोग, ४३- न्यास (१- ओङ्कार, २- व्याहृति, ३- मन्त्रपाद, ४- मन्त्रपद, ५- मन्त्राक्षर और ६- तुरीयपाद न्यास-

---

१. यहां से 'षडर्घ्य-विधान' सातवें अर्घ्य तक है। अर्घ्यदान-मन्त्रों के स्वरूप भिन्न-भिन्न हैं। इस अर्घ्य के मन्त्र में सर्वप्रथम 'ॐ हलरी और अन्त में '**ॐ अर्चयन्ति तपः सत्यं मधु क्षरन्ति यद्वचः**' मन्त्र का भी समावेश है।

२. ब्रह्मास्त्रमुद्रा—**डमरुं खेचरं चैव चक्रं बाणं गदां तथा।**
खड्गं त्रिशूलकं चैव ब्रह्मास्त्रस्य च मुद्रिकाः॥

३. **चक्रं पाशं च कमलं बाणं खड्गं तथाङ्कुशम्।**
मुशलं मुद्गरं चैव ब्रह्मदण्डस्य मुद्रिकाः॥

४. **निर्वाणं खेटकं खड्गं योनिः पाशं कपालकम्।**
अङ्कुशं तोमरं चैव ब्रह्मशीर्षस्य मुद्रिकाः॥

५. **वज्राभये······इत्यादि (पूर्णः पाठो न लब्धः)।**

६. इस अर्घ्य को सम्प्रति कालातिक्रमदोष की निवृत्ति हेतु देने की परम्परा है। यदि वैश्वदेव किया जाता है तो यह अर्घ्य देना आवश्यक नहीं है।

सहित)[१], ४४- प्रातर्गायत्रीध्यान (ब्रह्माणी चतुरानना० से), ४५- चौबीसमुद्रादर्शन, ४६- गायत्र्युत्कीलन, ४७- जातक-सूतकनिवृत्ति-मन्त्रजप, ४८- गायत्रीहृदय पाठ, ४९- गायत्री-जप (पूर्वाङ्ग १- गायत्री भैरव-दशांश, २- गायत्री प्रथमपाद-दशांश, ३- मूलमन्त्र (पञ्चप्रणव, त्रिबीज, त्रिव्याहृति, त्रिपाद तथा नमोऽन्त, ४- तुरीयपाद-अष्टांश, ५- शिवपञ्चाक्षर मन्त्र-दशांश क्रम से[१] तथा जपान्त में उत्तराङ्ग—मृताशौचमन्त्र जप, उत्कीलनमन्त्रजप, अष्टमुद्रा-दर्शन, गायत्रीकवचपाठ और जपनिवेदन), ५०- गायत्री-तर्पण, मार्जन, प्रदक्षिणा तथा-सूर्यादिदेवतानमस्कार, ५१- प्रार्थना, विसर्जन, अभिवादन, कर्मपूर्त्यर्थ अर्घ्यदान (नवम), शिखामुक्ति, पुनः शिखाबन्धन तथा आसनाधःस्थित मृत्तिका से तिलकधारण।

मध्याह्न-सन्ध्या-विधि-परिचय

इस काल की सन्ध्या में करणीय कर्मों की तालिका इस प्रकार है—

१. श्रीगुरुस्मरण. २. श्रीगणपतिस्मरण, ३-१२—आसनादिविधि से सन्ध्याङ्गभूत आचमन विधि तक प्रातःसन्ध्या के समान, १३-प्राणायाम (अनादिष्ट प्रायश्चित्तात्मक पूर्ववत् न्यासादि सहित), १४-सन्ध्याङ्गसङ्कल्प, १५-दशाङ्गस्पर्शन एवं अष्टाङ्गमार्जन, १६-अन्तर्मातृकान्यास (स्थितिक्रम से), १७-बहिर्मातृकान्यास (स्थितिक्रम से) १८-गायत्र्यावाहन ('सावित्रीं युवतिं शुक्लाम्'० से), १९-अम्बूपस्पर्शन (अग्निश्च मा० से), २०-मार्जन (आपो हि ष्ठा० से), २१-जलावग्रहण, २२-अघमर्षण एवं पापपुरुष-निरसन, २३-आचमन (अन्तश्चरसि० से), २४-शुद्धार्घ्यदान, २५-(स्थितिक्रमात्मक गायत्रीमन्त्र से), २६-प्रायश्चित्तार्घ्यदान, २७-आचमन तथा प्राणायाम, २८-सूर्योपस्थान, २९-गायत्र्यन्तर्धारण, ३०-गायत्र्युपस्थान, ३१-गायत्रीजपविनियोग, ३२-न्यास—(१)-ओङ्कार०, (२)-व्याहृति०, (३)-मन्त्रपद० (४)-मन्त्रपाद० (द्वितीय) (५)-मन्त्राक्षर०, ३३-मध्याह्न गायत्रीध्यान, ३४-चौबीस मुद्राप्रदर्शन (मध्याह्नमुद्रा-पद्धति से), ३५-गायत्रीजप स्थितिक्रम से—(१)-गायत्रीभैरवजप दशांश, (२)-द्वितीयपाद जप दशांश, (३)-मूलगायत्रीजप (२-३-१ क्रमात्मक त्रिपाद पञ्चप्रणव त्रिबीज नमोऽन्त गायत्री मन्त्र से), (४) तुरीयपादन्यास एवं तुरीयपाद जप अष्टांश, (५) शिवपञ्चाक्षरमन्त्र जप-दशांश; ३६-अष्टमुद्रादर्शन एवं जपनिवेदन, ३७-गायत्रीतर्पण, मार्जन, प्रदक्षिणा, ३८-सूर्यादिदेवता नमस्कार, ३९-प्रार्थना, विसर्जन, अभिवादन, शिखामुक्ति एवं पुनर्बन्धन; ४०-आसन के अधःस्थ मृत्तिका द्वारा तिलकधारण।

सायंसन्ध्या-विधि-परिचय

इस काल की सन्ध्या में जिन-जिन कर्मों का विधान प्राप्त होता है, उनकी परिचयात्मक

---

१. गायत्री-जप का यह प्रकार 'गायत्री-स्तवराज, वसिष्ठ-स्मृति, विश्वामित्र-स्मृति एवं प्राचीन सन्ध्या-विधियों के आधार पर संगृहीत है। बीजत्रय-सम्पुटित मन्त्र से भिन्नपाद-गायत्रीका जप होता है। इसमें कुण्डलिनी बीज, भुवनेश्वरी बीज, बाला-बीज आदि अपनी-अपनी दीक्षा के अनुसार जोड़े जाते हैं।

सूची निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत है—

१-श्रीगुरुस्मरण, २-श्रीगणपतिस्मरण, ३-१२-आसनादि-विधि-पूर्ववत् (यह कृताकृत कही गई है), १३-सन्ध्याङ्गभूत आचमन, १४-प्राणायाम (न्यासादि सहित), १५-सन्ध्या-सङ्कल्प, १६-इन्द्रियशुद्धिमूलक मार्जन, १७-अन्तर्मातृकान्यास (संहारक्रम से), १८-बहिर्मातृकान्यास (संहारक्रम से), १९-गायत्र्यावाहन, (वृद्धां सरस्वतीं०), २०-अम्बूपस्पर्शन (अग्निश्च०), २१-मार्जन (आपो हि ष्ठा०), २२-जलावग्रहण, २३-अघमर्षण तथा पापपुरुषनिरसन, २४-आचमन, २५-ब्रह्मास्त्रमन्त्र से प्रथमार्घ्यदान, २६-ब्रह्मदण्ड-मन्त्र से द्वितीयार्घ्यदान, २७-ब्रह्मशीर्षमन्त्र से तृतीयार्घ्यदान, २८-ब्रह्मशिखामन्त्र द्वारा चतुर्थार्घ्यदान, २९-शुद्धार्घ्यदान, ३०-आवश्यकता होने पर प्रायश्चित्तार्घ्यदान, ३१-आचमन तथा प्राणायाम, ३२-सूर्योपस्थान, ३३-गायत्र्यन्तर्धारण, ३४-गायत्र्यावाहन एवं उपस्थान, ३५-गायत्रीजपविधान (विनियोग, न्यास-पञ्चविध संहार-क्रम से), ३६-सायं गायत्रीध्यान, ३७-चौबीसमुद्राप्रदर्शन (संहारक्रम से) ३८-गायत्रीजप-प्रक्रिया-(१)-गायत्रीभैरवमन्त्रजप-दशांश, (२)-गायत्रीतृतीयपाद जप-दशांश, (३)-सायं गायत्रीमन्त्रजप (३-२-१ पाद क्रम से पञ्चप्रणव, त्रिबीज, त्रिव्याहृति एवं नमोऽन्त), (४)-तुरीयपादन्यास तथा तुरीयपाद जप अष्टांश, (५)शिवपञ्चाक्षर (मन्त्रजप-दशांश); ३९-आठ मुद्राओं का प्रदर्शन, ४०-गायत्रीकवच पाठ, ४१-जपनिवेदन, ४२-गायत्रीतर्पण, मार्जन, प्रदक्षिणा, सूर्यादिदेवतानमस्कार तथा प्रार्थना, ४३-विसर्जन तथा अभिवादन, ४४-कर्मपूर्त्यर्घ्यदान, शिखामुक्ति तथा पुनर्बन्धन, ४५-आसन नमस्कार एवं सन्ध्याभूमिमृत्तिका-वन्दन ।

तुरीय काल सन्ध्या-विधि-परिचय

तुरीय का अर्थ चार होता है अतः इस समय में की जानेवाली सन्ध्या को तुरीया कहते हैं। इसी का आगमिक नाम 'अन्तर्लीन' अथवा 'अनाख्या' भी है। यह सन्ध्याकाल प्रकटरूप से दृष्टिगोचर नहीं होता है किन्तु रात्रिकाल के प्रारम्भ से कुछ पश्चात् प्रायः ९ बजे का समय इसके लिये शास्त्रविहित है। कालापकर्षण के अनुसार इसे सायंसन्ध्या पूर्ण करके भी किया जा सकता है। इस सन्ध्या में कर्तव्य कर्मों की सूची निम्नलिखित है—

१-श्रीगुरुस्मरण, २-श्रीगणपतिस्मरण, ३-सन्ध्याङ्गभूत आचमन, ४-प्राणायाम, ५-सन्ध्यासङ्कल्प, ६-अन्तर्मातृका-न्यास, एवं अनाख्यामातृका न्यास, ७-तुरीयागायत्र्यावाहन, ८-एक अर्घ्यदान, ९-आचमन एवं प्राणायाम, १०-चन्द्रोपस्थान, ११-तुरीयान्तर्धारण, १२-तुरीया-वाहन, १३-तुरीयोपस्थान, १४-तुरीया जपप्रयोग—(१)-विनियोग न्यास, प्रणव, व्याहृति एवं तुरीयपदन्यास, मन्त्रपादन्यास, मन्त्राक्षरन्यास, तथा तुरीयागायत्रीध्यान, १५-आयुधमुद्रा प्रदर्शन, १६-तुरीयाभैरवजप, तुरीयापादजप, चतुष्पदागायत्री जप, तुरीयपादजप अष्टांश, तथा शिवपञ्चाक्षर मन्त्रजप-दशांश, १७-तुरीयागायत्री वर्णस्तोत्रपाठ, १८-जपनिवेदन, १९-चन्द्रादि देव नमस्कार, २०-प्रार्थना तथा २१-विसर्जनादि ।

पञ्चम काल-सन्ध्या-विधि-परिचय

इस काल की सन्ध्या में भस्मधारण से अर्घ्यदान तक का प्रयोग नहीं होता है क्योंकि

यह सन्ध्या प्रातः-सन्ध्या से पूर्व की जाती है। इसमें साधक रात्रिवस्त्रत्याग करके शुद्धवस्त्र धारण करे।[1] (१)-तदनन्तर आसन पर पूर्व अथवा उत्तराभिमुख बैठकर निम्नलिखित विधि का अनुसरण करे—

१-गुरु स्मरण, २-विराड् गणपति स्मरण, ३-सन्ध्याङ्गभूत मानसिक आचमन, ४-प्राणायाम, ५-भासा-सन्ध्या का मानसिक सङ्कल्प, ६-अन्तर्मातृका न्यास (भासा-प्रक्रियात्मक), ७-बहिर्मातृकान्यास (भासाप्रक्रियात्मक), ८-भासाध्यान, ९-अङ्गपूजा, १०-आयुधपूजा ११-आयुधमुद्रा प्रदर्शन,[2] १२-जपविनियोगादि (ऋष्यादिन्यास, करन्यास, अङ्गन्यासयुक्त), १३-मन्त्र न्यास (पञ्चपदागायत्री का), १४-शताक्षरागायत्रीविनियोग, (त्रिविधन्याससहित), ध्यान तथा जप, १५-पञ्चपदा गायत्री विनियोग, (त्रिविधन्यास एवं ध्यान) और १६-जप।

इस काल में मन्त्रजप के दो प्रकार होते हैं—१-सामान्य एवं २-विशिष्ट। यथा—

(१) सामान्य जप प्रकार—

१-पञ्चपदा-गायत्री का भैरव-मन्त्र	दशांश	'ॐ खं ब्रह्म।'
२-पञ्चपदा गायत्री का मन्त्रपद	दशांश	'आपो ज्योती०।'
३-पञ्चपदा गायत्री समस्त मन्त्र	सङ्कल्पानुरूप	'पञ्चपदा।'
४-पञ्चपदा गायत्री पञ्चमपाद	अष्टांश	'आपोज्योती०।'
५-शिवमन्त्र पञ्चाक्षर	दशांश	'ॐ नमःशिवाय।'

(२) विशिष्ट जप प्रकार—

इसमें सर्वदेवमयी विराड्रूपा निर्वाण-गायत्री का तथा प्रत्येक आम्नाय-नायिका का भासाक्रम से ध्यान करके वार-परत्वेन जप किया जाता है। इनके मन्त्रजप की तालिका इस प्रकार है—

क्रम	वार	जपस्थान	आम्नायनायिका	रश्मि
१.	रविवार	मूलाधार चक्रस्थान	तारा	पार्थिवरश्मि
२.	सोमवार	मणिपूर ,,	भुवनेश्वरी	जल ,,
३.	मंगलवार	स्वाधिष्ठान	दक्षिणकालिका	तेजो ,,
४.	बुधवार	अनाहत ,,	कुब्जिका	वायु ,,
५.	गुरुवार	विशुद्ध ,,	गुह्यकालिका	आकाश ,,
६.	शुक्रवार	आज्ञा ,,	बालात्रिपुरा	मानसांश
७.	शनिवार	सहस्रार ,,	महात्रिपुरसुन्दरी	सर्वाग्नि०

१-इन देवियों के मन्त्रों को गायत्री के तीनों चरणों के साथ तीन भाग से वेष्टित करके जप करने का विधान है। वेष्टनविधि बाला मन्त्र के समान समझें।

१- इस समय स्नान न कर सके तो हस्तपादादि-प्रक्षालन-पूर्वक भस्मस्नान (भस्मधारण) कर ले। २. तुरीया और भाषा सन्ध्या में आयुधमुद्राएं ही होती हैं ऐसा भी शास्त्रवचन है।

२-दशमहाविद्याओं से दीक्षित **'दशमहाविद्यामयी गायत्री'** का ध्यान करके तत्तद्देवी-मन्त्रवेष्टित गायत्री का जप करे।

३-जो सर्वाम्नायी उपासक हो वह लघुषोढा एवं महाषोढा-न्यास[1] के पश्चात् गायत्री-मन्त्र एवं अपने इष्टमन्त्र का जप करे।

४-जो सामान्य उपासक हों वे अपने इष्टमन्त्र के साथ गायत्री के तीनों पादों को वेष्टित करके जप करते हैं।

५-जो आम्नायक्रम से दीक्षा प्राप्त न होकर केवल गायत्री से ही दीक्षित हों, वे उपासक शिरोमन्त्र **'आपो ज्योतीरसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरोम्'** तथा **'अर्चयन्ति तपः सत्यं मधु क्षरन्ति यद् ऋचः'** मन्त्र का जप करें।

इसी समय शताक्षरा गायत्री-जप का भी विधान है। जप के पश्चात् १७-अष्टमुद्रादर्शन,[2] १८-जपनिवेदन, १९-प्रार्थना तथा २०-विसर्जन करके पञ्चमकाल की सन्ध्या सम्पन्न करे।

सन्ध्या की इस सुदीर्घ सूची से सहसा कोई भी सन्ध्या करने का इच्छुक साधक भयभीत हुए बिना नहीं रहेगा। क्योंकि इतना सब करने के लिए कितना समय चाहिए ? कितना ज्ञान और उपस्थिति चाहिये ? इस लेखक की भी यही स्थिति थी। अन्ततः हमने पूछ ही लिया कि गुरुदेव ! इतना प्रतिदिन कैसे किया जा सकता है ? तब वे विनोद-पूर्वक कहने लगे कि— **"शास्त्रीजी ! प्रारम्भ में यदि कोई एक मास में एक बार भी इस विधि से सन्ध्या कर लेगा तो इसकी ऊर्जा पूरे महीने भर बनी रहेगी यह सब अभ्यास का विषय है।"** आदि।

वस्तुतः साधना का मार्ग सरल नहीं है किन्तु इससे उसका त्याग करना कदापि उचित नहीं होता। साधक को सदा श्रम से नहीं डरना चाहिये।

---

१. 'महाषोढा-न्यास' भी दो प्रकार से किये जाते हैं, जिनमें प्रथम प्रकार यह है कि जिस क्रम में दीक्षा प्राप्त हो, उसी क्रम से आराध्य इष्टदेव अथवा देवी का महाषोढा न्यास करे। द्वितीय प्रकार में साधक यदि कालीकुल अथवा श्रीकुल से दीक्षा प्राप्त करके पूर्णाभिषिक्त हो गया हो, तो वह वारपरत्वेन ६ दिन की ६ महाविद्याओं के महाषोढान्यास तथा कवचादि का पाठ करे और सातवें दिन सभी न्यासों की समष्टि करे। इन पंक्तियों के लेखक ने "महाषोढान्यासावली" नाम से ऐसा एक ग्रन्थ तैयार किया है, जो **'यतिदण्डैश्वर्यविधान'** ग्रन्थ के साथ छप रहा है तथा विस्तृतपरिचय एवं हिन्दी अनुवाद सहित स्वतन्त्र छपाने की भी योजना है।

२. सभी मुद्राएँ पञ्चतत्वरूप हैं और कनिष्ठादि पृथ्वीतत्त्व से बनती हैं और ये कनिष्ठादि अंगुलियां मूलाधारादि चक्ररूप भी हैं। इनका परस्पर मेलन होने से नाड़ियों के माध्यम से उन चक्रों में चैतन्य आता है तथा ये सभी नाड़ियां कुण्डलिनी से सम्बद्ध हैं, अतः मुद्राएँ कुण्डलिनीप्रबोधन में सहायक होती हैं। इसीलिये मुद्राप्रदर्शन आवश्यक बतलाया है।

इसी प्रकार लेखक को एक अन्य **'सन्ध्या-विधि'** भी ऐसी ही महत्त्वपूर्ण प्राप्त हुई है जो **पं० कालीचरणजी शास्त्री** (ज्योतिष एवं तन्त्र-निष्णात) **सनावद** (म० प्र०) निवासी की कृपा से प्राप्त हुई है। इस सन्ध्या-विधि को उन्होंने कई वर्षों तक गुरुशुश्रूषा करने के बाद उदयपुर महाराणा के गुरु से प्राप्त की और उनकी सेवा से प्रसन्न होकर गुरुजी ने कहा था कि—"बेटा मेरे पास अन्य कोई मन्त्र-तन्त्र नहीं है, जो कुछ सिद्धि है, इसी सन्ध्या-विधि के प्रभाव से है इससे अवश्य ही माँ गायत्री के दर्शन होते हैं।" आदि।

यह सन्ध्या भी प्राय: उपर्युक्त विधान से ही बहुधा साम्य रखती है किन्तु इतना विस्तार इसमें नहीं है। क्रम में थोड़ा अन्तर है तथा कुछ प्रकारों में नवीनता भी है। उदाहरणार्थ—**'गायत्री-यन्त्र'** और उसका पूजा-विधान, तत्त्व-शोधन, अस्त्रोपसंहरण-मन्त्र आदि। अन्त में **'वन्दन-स्तोत्र'** जो कि सन्ध्या की ही स्तुति है वह भी महत्त्वपूर्ण है।

इसी प्रकार हमने और भी बहुत-सी सन्ध्या एवं गायत्री-पुरश्चरण से सम्बद्ध पाण्डुलपियों का संग्रह किया है, जिसपर अनुसन्धान-कार्य चल रहा है। यथासमय माँ गायत्री की अनुकम्पा हुई तो उसे भी प्रकाशित करने का प्रयास करेंगे।[1]

सन्ध्या-रहस्य

सन्ध्या के रहस्य को समझाते हुए नेपाल के महान् तन्त्रज्ञ **श्री धनशमशेर सिंह** राणा साहब ने अपने एक लेख[2] में बहुत ही गम्भीरता से समझाया है कि—

"गायत्री का ध्यान सूर्यमण्डल में किया जाता है, इसका तात्पर्य यह है कि सूर्य को **'सप्ततुरग'** कहा जाता है, शीघ्र चलनेवाले अर्थात् शीघ्र पहुंचानेवाले की **'तुरग'** संज्ञा है। इस लिये तेज अथवा किरण से शीघ्र पहुँचानेवाला कोई अन्य पदार्थ न होने से तथा सूर्य में **'इनीखहपीस्वरा:'** इस **'बिन्दुसूक्त'** के अनुसार सात वर्णोंवाली किरणों के होने से श्री सूर्यदेव को 'सप्त-तुरग' इस नाम से पुकारा जाता है। तन्त्र-शास्त्र में मुख्य दो सूक्तों की मान्यता है—

(१) एक **बिन्दुसूक्त**—**'इनीखहपीस्वरा:'** अर्थात् 'इ' (इन्द्रनील अथवा वायोलेट), **'नी'** (नील अथवा इण्डिगो), **'ख'** (आकाश अथवा ब्ल्यू), **'ह'** (हरित अथवा ग्रीन), **'पी'** (पीला अथवा यलो) 'स्व' (स्वर्णरंग अथवा ओरेंज) तथा 'र' (रक्त अथवा रेड)। इन सब में से इन्द्रनील अथवा वायोलेट किरण सभी किरणों से सूक्ष्म है। उपर्युक्त क्रम के अनुसार रक्तकिरण सब से बड़ी है।

---

१. हमने इससे पूर्व **'गायत्री-रहस्य-दर्पण'** नामक एक पुस्तक जो कि 'पं० रामचन्द्रजी शास्त्री उज्जैन' ने तैयार की थी, उसका भी सम्पादन किया है। उसमें 'गायत्री-लहरी' (डा० रुद्रदेव त्रिपाठी द्वारा रचित) भी सानुवाद प्रकाशित हैं, वह भी द्रष्टव्य है।

२. यह लेख आचार्य पं० रमानाथजी शास्त्री (शक्तिपीठ, मुडेटी, गुजरात) ने अपनी गुजराती पुस्तक **"सन्ध्या-रहस्य"** में प्रकाशित किया है, और उन्हीं के द्वारा यह लेखक को प्राप्त है। इस पुस्तक का हिन्दी अनुवाद भी अब प्रकाशित कर रहे हैं।

(२) दूसरा '**नादसूक्त**'—'**षऋगमपधनि**' अर्थात् ये सात स्वर हैं। '**ष**' (षड्ज), '**ऋ**' (ऋषभ), '**ग**' (गान्धार), '**म**' (मध्यम), '**प**' (पञ्चम) '**ध**' (धैवत) तथा '**नि**' का अर्थ (निषाद) है। उपर्युक्त सात स्वरों में षड्ज स्वर सबसे बड़ी मात्रा (भार) वाला है तथा उपर्युक्त क्रमानुसार निषाद स्वर सब से हल्की मात्रावाला है। ऊपर बताये गये दोनों सूक्तों के इतरेतराध्यास से पञ्चाशत् मातृका की उत्पत्ति हुई है।

शास्त्रकारों ने चार सन्ध्याओं की उपासना नियमानुसार करने के लिये आदेश दिया है—(१) **प्रातःकाल सन्ध्या**, (२) **मध्याह्नकाल सन्ध्या**, (३) **सायङ्काल सन्ध्या**, तथा (४) **मध्यरात्रि सन्ध्या** जिसे **उपसन्ध्या काल** (**तुरीया**) कहा जाता है।[1] गृहस्थाश्रमी साधकों के लिये सन्ध्याकर्म आवश्यक माना गया है। इसका रहस्य अतिगहन है। ऊपर दिखाये अनुसार सन्ध्या करने के लिये इससे पूर्व गायत्री तथा दीक्षा का कर्म साङ्गोपाङ्ग करना परम आवश्यक है, क्यों कि '**कुलधर्मः सनातनः**' इस शास्त्रवचन के अनुसार तथा '**वामदक्षक्रियायुक्तः कौलश्चोभय-मिश्रितः**' एतदनुसार '**गायत्री**' की उपासना वैदिक-मतानुसार दक्षिणाचार से तथा '**विद्या**' की उपासना तान्त्रिक-मतानुसार वामाचार से होती है। इस लिये सनातनी कौल-साधक पहले दक्षिणाचारोक्त मन्त्र गायत्री ग्रहण करके, वामाचारोक्त (मन्त्र) विद्यादीक्षा लेकर कुलीन अर्थात् कौल बनता है।

अपरोक्ष से अथवा परोक्ष से गृहस्थाश्रमी प्रत्येक मनुष्य कौल है। कौल के तीन प्रकार हैं, क्योंकि गृहस्थी अपने सन्ध्याकर्म में गायत्रीमन्त्र तथा दीक्षामन्त्र विद्या का जप करता है, किन्तु '**पशुकौल**', '**वीरकौल**' तथा **दिव्यकौल**' में अन्तर तो है ही।

चारों कालों में सन्ध्या करने का तात्पर्य है कि सूर्योदय से सूर्यास्त पर्यन्त '**इनीखह-पीस्वराः**' इन सप्तवर्णात्मक किरणों में से अपनी-अपनी स्थूलता के प्रमाणानुसार निश्चित समय तक पूर्व चार किरणें सीधे रूप में तथा तीन किरणें विपरीत रूप से क्रमशः प्रबल होती हैं अर्थात् '**इनीखहपीस्वरा**' में से '**इ**' से सूर्योदय हो, तदनन्तर '**नी**' तत्पश्चात् '**ख**', फिर '**ह**' उसके बाद विपरीत क्रम से '**र**' तदनन्तर '**स्व**' और अन्त में '**पी**' में सूर्यास्त हो जाता है।

उदाहरणार्थ— दिनमान २८ घड़ी का है, उसमें वर्ण की स्थूलता के मान से सूर्योदय से एक घड़ी तक इन्द्रनील किरणों की, तत्पश्चात् दो घटिका तक नीलकिरणों की, उसके अनन्तर तीन घटिका तक ब्ल्यू किरणों की, तत्पश्चात् चार घटिका तक हरित किरणों की बाद में विप-रीत-क्रम से पुनः सात घटिका तक रक्तकिरणों की, छह घड़ी तक सुवर्ण किरणों की तथा पांच घटिका तक पीत-किरणों की प्रबलता के लिये सूर्यास्त होता है।

इस प्रकार दिनमान के दक्षिणायन और उत्तरायण के हिसाब से न्यूनाधिकता के मान से किरणों की प्रबलता के समय की न्यूनाधिकता होती है। इस लिये मौसम के अनुसार प्रातःकाल

१. पञ्चमकाल की सन्ध्या का यहां उल्लेख नहीं है। सम्भवतः गुप्त होने से उसे यहां नहीं कहा गया है।

में शीत होकर मध्याह्न तक उष्णता क्रमशः बढ़कर मध्याह्न में पूर्ण उष्णता होकर पुनः उष्णता के क्रम से घटकर सायं शीत होकर सूर्यास्त होता है, यह लोकप्रसिद्ध बात है।

इन प्रत्यक्ष कारणों से प्रमाणित होता है कि प्रातःकाल में इन्द्रनील-किरणों की, मध्याह्नकाल में रक्तकिरणों की तथा सायङ्काल में पीली किरणों की प्रबलता रहती है। इसलिये प्रातःकाल में सूर्य के सामने, स्नान के पश्चात् अर्धनग्नावस्था (केवल अधोवस्त्र एवं ऊर्ध्ववस्त्र) में सूर्याभिमुख बैठकर नित्यकर्म करने से इन्द्रनील किरणों के प्रबल प्रभाव द्वारा आरोग्य की प्राप्ति (आरोग्यं भास्करादिच्छेत्) तथा मन्त्र की जागृति होती है।

उसी प्रकार मध्याह्नकाल में सूर्य के दक्षिण में होने से रक्त किरणों के प्रबल प्रभाव से स्नान के पश्चात् उत्तराभिमुख होकर नित्यकर्म करने से रक्त किरणें देह के पृष्ठभाग पर गिरने से शारीरिक स्फूर्ति की प्रबलता बढ़ती है और मन्त्र की जागृति होती है।

इसी प्रकार सायंकाल में सूर्य के पश्चिम में होने से पीत-पीली किरणों के प्रभाव से स्नान करने के पश्चात् पश्चिमाभिमुख होकर, नित्यकर्म करने से पीत किरणों के सम्मुख पड़ने से चित्त की विश्रान्ति के साथ ही आनन्द की प्राप्ति और मन्त्र-मनन का अनुभव होता है।

इसी प्रकार रात्रि में सूर्य के न होने से उस समय जप करने से तल्लीनता एवं एकता का अनुभव होता है। **'अशुचिस्तु तथा रात्रौ'** इस शास्त्रोक्ति के अनुसार स्नानादि के नियम निशा अथवा तुरीया सन्ध्या में लागू नहीं होते।"

इसी प्रसङ्ग में आगे सन्ध्या-विषयक तान्त्रिक विचार प्रस्तुत करते हुए उन्होंने उपर्युक्त लेख में लिखा है कि—

"यहां एक अन्य विचारणीय वस्तुस्थिति यह भी है, **'सोमसूर्यात्मकं जगत्'** तथा **'वामदक्षक्रियायुक्तः कौलश्चोभयमिश्रितः'** इन वचनों के अनुसार **'सोमादिमार्ग से'** वाममन्त्र दीक्षा तथा **'अचिरादि मार्ग से'** दक्षमन्त्र की दीक्षा प्राप्त करके गायत्री की उपासना, कौलों के लिये नितान्त आवश्यक है। इसीलिपे आर्यगुरुओं ने गृहस्थाश्रमियों के लिये मन पवित्र रखकर प्रातः सन्ध्या—प्रातःकाल से मध्याह्नकाल की एक घड़ी आगे तक, मध्याह्न सन्ध्या—मध्याह्नकाल से अपराह्नकाल तक तथा सायंसन्ध्या—सायंकाल से अर्धरात्रि तक अपनी सुविधानुसार सन्ध्याकर्म करने का आदेश दिया है। **'आगमनिर्णय'** नामक हस्तलिखित पुस्तक में निम्नलिखित उक्ति है—

प्रातर्मध्याह्नपर्यन्तं मध्याह्नादपराह्नतः।
सायाह्नादि निशान्तं च त्रिसन्ध्यं कृत्यमाचरेत्॥
प्रत्यहं तु प्रकर्तव्यं सन्ध्यालोपं न कारयेत्॥

तथा निशासन्ध्या अर्थात् तुरीया-सन्ध्या के बारे में कथन इस प्रकार है—

गते तु प्रथमे यामे तृतीयप्रहरावधि।
तावज्जपः प्रकर्तव्यो रात्रिशेषे जपो नहि॥

अर्थात् पहला प्रहर बीत जाने के बाद तीसरे प्रहर तक जप करना चाहिये। शेष रात्रि में जप नहीं करना चाहिये।

तान्त्रिक-सन्ध्या

इसके अतिरिक्त दीक्षित उपासकों के लिये वैदिक सन्ध्या करने के पश्चात् तान्त्रिक-सन्ध्या करने का विधान है।[1] **'वैदिकीं समाप्य तान्त्रिकीमाचरेत्'**। इसमें दीक्षित साधकों के लिये विशेषता है कि तान्त्रिक साधकों को देवीमान[2] [जिस गुरुपरम्परा में निर्वाणदीक्षा का क्रम (सर्वाधिकार दीक्षा) नहीं होता है उस परम्परा में (अहर्गण) पञ्चाङ्ग, अष्टाङ्ग अथवा षोडशाङ्ग-क्रम द्वारा सङ्कल्प करके अर्चना की जाती है।] के अनुसार अर्थात् "अष्टाङ्ग, द्वादशाङ्ग अथवा षोडशाङ्ग" तान्त्रिक पञ्चाङ्ग के अनुसार सङ्कल्प करके गुरुपरम्परा तथा आम्नाय क्रम से नीचे बतायी गयी चारों सन्ध्याओं के साथ नित्यक्रम करने से साधक शाम्भवरूप होकर सिद्धिलाभ प्राप्त करता है।

सुन्दरी तारिणी काली क्रमदीक्षाभिगामिनी।
क्रमदीक्षायुतो देवि! क्रमाच्छम्भुर्भविष्यति ॥ (इति)

तान्त्रिक सन्ध्या-विधिपरिचय

तान्त्रिक-सन्ध्या में क्रमशः '१- आचमन,[3] २- शिखाबन्धन, ३- प्राणायामत्रय, ४- मूलमन्त्र का विनियोग, ऋष्यादिन्यास, करन्यास और षडङ्गन्यास एवं अङ्गपञ्चकन्यास,[4] ५- जलाभिमन्त्रण, जल में त्रिकोणषट्कोणात्मक मन्त्रनिर्माणपूर्वक तीर्थाकर्षण, ६- आवाहनादि सप्तमुद्रादर्शन,[5] ७- तीर्थावाहन, ८- शिरः प्रोक्षण,[6] ९- परदेवताध्यान, १०- अर्घ्यत्रयदान,

---

१- **ततो द्विजातिश्चेत् सन्ध्यां वेदप्रोक्तां विधाय हि।**
आचरेत् तान्त्रिकीं शूद्रो न पूर्वामुत्तरां चरेत् ॥९॥
—महाकालसंहिता, पटल-६।

२. एतदर्थं पं० रमानाथजी शास्त्री के अन्य तीनों महाविद्याओं के **'क्रमदीक्षाविषयक ग्रन्थ'** देखने अनिवार्य है।

३- तान्त्रिक आचमन में चौथा आचमन भी किया जाता है, जो सर्वतत्त्व का शोधन करता है। आचमन के लिये निर्देश है कि —

त्रिरुन्मृज्य सकृत् स्पृष्ट्वा नासिके नयने शिरः।
हृदयं दक्षिणं कर्णं संस्पृशेदयमाचमः ॥

४- मस्तक, मुख, हृदय, गुह्य तथा पैरों पर अङ्गपञ्चकन्यास होता है। यहीं दक्षिण कर में शिव और वाम कर में शक्ति का भी न्यास किया जाता है।

५- आवाहनी, स्थापनी, सन्निरोधिनी, अवगुण्ठनी, सम्मुखीकरणी, धेनु और योनि ये सात मुद्राएं यहां सूचित हैं।

६- शिरःप्रोक्षण का विधान यहां भिन्न-भिन्न है। यथा — दाहिने हाथ में जल लेकर उसे बांये हाथ से ढक ले और मूलमन्त्र से सात बार अभिमन्त्रित कर जल को बांये हाथ में ले तथा अंगुलियों के बीच से गिरते हुए जल से **य** से **क्ष** तक १० वर्णों से शिरोमार्जन कर शेष जल गिरा दे। पुनः पूर्ववत् अन्य जल लेकर **क** से **म** तक २५ वर्णों और मूलमन्त्र

११- परदेवतातर्पण (तीन बार), १२- पूर्ववत् प्रणायाम और न्यासपूर्वक **स्वेष्टगायत्रीध्यान**, १३- जप, १४- जपसमर्पण, १५- स्तुति, १६- प्रणाम, १७- सूर्यमण्डल से इष्टदेव का हृदय में स्थापन-पूर्वक विसर्जन तथा श्रीगुरुवन्दन का विधान है। यहीं सौरपूजन का भी विधान होता है। इसमें भी सूर्य को तीन अर्घ्य दिये जाते हैं।

यहां परदेवता के स्थान पर अपने-अपने इष्टदेव का ध्यान एवं गायत्री का प्रयोग करते हुए चारों काल की सन्ध्या करने का आवश्यक निर्देश है। पञ्चमकाल में वैदिक सन्ध्या के समान ही इष्टदेवता के विराट्स्वरूप का चिन्तन तथा अन्यविधि का प्रयोग किया जाता है।

प्रातःसन्ध्या के साथ तान्त्रिक पञ्चाङ्गानुसार १. **नाथपारायण**, २. **चक्रेश्वरी-पारायण** तथा ३. **घटिका-पारायण** क्रम सहित अपनी उपास्य देवता का सृष्टिक्रम पूर्ण करने से क्रमदीक्षा के आह्निक का एक भाग पूर्ण होता है।

इसी प्रकार वैदिक मध्याह्न सन्ध्या करने के पश्चात् तान्त्रिक सन्ध्या करना, तदनन्तर १. **तत्त्व-पारायण** तथा देवता का स्थितिक्रम करना चाहिये। और उसी प्रकार से सायंकाल में वैदिक सायं सन्ध्या समाप्त करके तान्त्रिकसन्ध्या करने के पश्चात् १. **नित्यापारायण** तथा देवता का संहारक्रम पूर्ण करना चाहिये। इसी प्रकार तुर्या में शुद्धासन पर बैठकर मानसिक सन्ध्या कर उसमें केवल गायत्री का ध्यान, मुद्रा तथा जप करे तथा उपास्य देवता के निर्वाणमन्त्र का भी यथाशक्ति जप करके १. **नामपारायण**, २. **मन्त्रपारायण** तथा ३. **आम्नायपारायणक्रम** किया जाता है। इसमें भी गुरुपरम्परा-भेद होने से अपने गुरुदेव को पूछकर अपनी-अपनी परम्परा के अनुसार योग्य कार्य करें।[1]

से अभिमन्त्रित जल पी जाए। फिर अन्य जल लेकर पूर्ववत् विधि करके बिन्दु सहित अकारादि १६ स्वरों और मूलविद्या से अभिमन्त्रित अपने सिर पर मार्जन कर उस जल को दाहिने हाथ में ले तथा मूलमन्त्र से वाम नासिका में चन्द्रमण्डलवाहिनी इडा से उस जल को पूरक प्रयोग द्वारा खींच कर अन्तर्नाडी का प्रक्षालन करे तथा नाभि में प्रविष्ट अन्धकारतरङ्गरूप कज्जल के समान पापपुरुष को पुनः सूर्यमण्डलवाहिनी पिङ्गला के द्वारा रेचक प्रयोग से विरेचित करे। तदनन्तर अस्त्रमन्त्र से हाथ को चक्राकार घुमाकर दाएं भाग में जल फेंक दें। यह **'भुवनेश्वरी-क्रमचन्द्रिका'** के अनुसार है। जबकि **'सिद्ध-सिद्धान्त सिन्धु'**कार ने पहले सबिन्दु मातृका वर्णों से शिरोमार्जन दिखला कर परदेवता-ध्यान एवं तदनन्तर पञ्चभूत बीजों से सप्तवार अभिमन्त्रण-पूर्वक पापपुरुषनिरसन की क्रिया बतलाई है जिसमें जल पीने का विधान नहीं है। **'आगम-रहस्य'** में इसे **'अघमर्षण'** कहा है।

१- पारायण-परिचय के लिए 'पीताम्बरा पीठ' दतिया (म०प्र०) से प्रकाशित—**'सप्तविंशति-रहस्यम्'** का अवलोकन करें।

सन्ध्या की वास्तविकता

सन्ध्या-सम्बन्धी ऊहापोह हजारों वर्षों से चला आ रहा है। विभिन्न दृष्टियां इसके सम्बन्ध में प्रस्तुत हुई हैं, जिनका समीचीन चिन्तन एक विशाल दृष्टि प्रदान करता है। सुप्रसिद्ध तान्त्रिक आचार्य **श्री भास्करराय मखी** ने **'ललिता-सहस्रनाम'** में आगत भगवती के 'सन्ध्या' नाम के भाष्य में कहा है कि—**'अविच्छिन्न चैतन्य में तथा स्वयं में अभेद भावना स्थापित करना ही सन्ध्या है।'** **महाभारत** में भी कहा गया है कि 'सन्ध्या सूर्य-मण्डल में विराजमान ब्रह्म ही है। ब्रह्मादि समस्त सच्चिदात्मा के अंशरूप देवताओं ने समुचित ध्यान द्वारा परिज्ञान किया है कि सन्ध्या उस ब्रह्म से पृथक् नहीं है। इसलिये उपासक की **'मैं उस ब्रह्म का दास हूं, मैं वही हूं'** ऐसी मति होती है, ऐसा वेदज्ञों ने कहा है। इसी अभेद-भावना के कारण त्रिपुर-सुन्दरी भी 'सन्ध्या' है। अतः गायत्री और ब्रह्म को पृथक् न मानते हुए 'मैं वह हूं' ऐसी भावना से उपासना करनी चाहिये। भारद्वाज स्मृति का वचन है कि—'ब्रह्मादि के आकार से भिन्न जो कर्मसाक्षिणी तेजोमयी ईश्वरी शक्ति है, वही सन्ध्या है।' इसी दृष्टि से स्तुतिकारों ने भगवती की स्तुति की है—' हे भगवती ! आप शिरोमन्त्र, तुरीयामन्त्र एवं गायत्रीमन्त्र सहित सन्ध्यामयी हैं और आप उसी रूप में महान् कर्मों का फल प्रदान करती हैं। **कालिकापुराण** में **'ब्रह्मा की मानसपुत्री सन्ध्या है,** जो कि उनके सम्यग् ध्यान से उत्पन्न हुई।' यही **'भगवती-पुराण'** में भी बतलाते हुए कहा गया है कि—'सन्ध्या ने तप करके अपने शरीर का त्याग किया और बाद में वह अरुन्धती के रूप में उत्पन्न हुई। **'रेणुकापुराण'** में कहा गया है कि—सन्ध्या के जो तीन रूप हैं, वे इडा-महाकाली, पिङ्गला-महालक्ष्मी एवं सुषुम्णा-एकवीरा (सरस्वती) के ही रूप हैं। अन्यत्र एक वर्ष की आयुवाली कन्या को भी 'सन्ध्या' कहा गया है।'[1]

---

१. आदित्यावच्छिन्नचैतन्यस्य स्वस्य चाभेदभावनं सन्ध्यापदार्थः। सम्यग् ध्यायन्त्यस्यामिति व्युत्पत्तेश्च। तदुक्तं महाभारते—सन्ध्येति सूर्यगं ब्रह्म सन्ध्यानादविभागतः। ब्रह्माद्यैः सकलैर्भूतैस्तदंशैः सच्चिदात्मनः॥ तस्य दासोऽहमस्मीति सोहमस्मीति या मतिः। भवेदुपासकस्येति ह्येवं वेदविदो विदुः॥ तदभेदादियं—(भगवती ललिता त्रिपुरसुन्दरी)मपि सन्ध्या। तथा च व्यासः—न भिन्नां प्रतिपद्येत गायत्रीं ब्रह्मणा सह। साऽहमस्मीत्युपासीत विधिना येन केनचित्॥ इति। भारद्वाजस्मृतावपि—'ब्रह्माद्याकारभेदेन या भिन्ना कर्मसाक्षिणी। भास्वतीश्वरशक्तिः सा सन्ध्येत्यभिहिता बुधैः॥ इति। "गायत्री सशिरास्तुरीयसहिता सन्ध्यामयीत्यागमैराख्याता त्रिपुरे त्वमेव महतां शर्मप्रदा कर्मणाम्" इत्यभियुक्तोक्तिरिति। अत एव सन्धिकालोपास्यदेवतापरोऽयं शब्द इति माधवः। सम्यग् ध्येयत्वात् सन्ध्या। 'आतश्चोपसर्गे' इति 'कर्मण्य'णिति परिजातकारः। इयं च ब्रह्मणो मानसपुत्री। तदुक्तं कालिकोपपुराणे—'तदा तन्मनसो जाता चारुरूपा वराङ्गना। नाम्ना सन्ध्येति विख्याता सायंसन्ध्या जयन्तिका॥ ब्रह्मणो ध्यायतो यस्मात् सम्यग् जाता वराङ्गना। अतः सन्ध्येति लोकेऽस्मिन्नस्याः ख्यातिर्भविष्यति। भगवतीपुराणेऽपि—'या सा सन्ध्या ब्रह्मसुता मनोजाता पुराऽभवत्। तपस्तप्त्वा तनुं त्यक्त्वा सैव भूता ह्यरुन्धती

इस प्रकार सन्ध्या वस्तुतः ब्रह्मोपासना का ही एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रकार है यह स्पष्ट होता है। समस्त संसार के स्थावर एवं जङ्गम प्राणियोंका सम्बन्ध सौर-मण्डल से ही है।[1] सौरमण्डल में ही नक्षत्र, ग्रह, तारा एवं चन्द्र, सूर्य सभी का प्रतिनिधित्व है। सौर-मण्डल की प्रधानता से त्रिदेव, साध्य, विश्वदेव, सप्तर्षि, मरुद्गण, तैंतीस कोटि देवगण सभी उसमें समाविष्ट होते हैं। तपोनिधि सूर्य तथा कलानिधि चन्द्र सृष्टि के नियन्त्रण कर्ता हैं। इनके द्वारा ही सभी सृष्टि के प्राणिमात्र का जन्म, पालन और संहार चलता है। सारे ब्रह्माण्ड की अचिन्त्य शक्तियां ही सौर-मण्डल में व्याप्त हैं। सूर्यनारायण की उपासना से सभी मानव-देहधारी उस सर्वतस्तेजोमय परमात्मा का ध्यान करके परम्परा से उस सर्वसमर्थता को प्राप्त कर सूर्य के समान तेजस्वी दिव्य गुणों को स्वयं में पा सकते हैं तथा उसके माध्यम से प्राणिमात्र का कल्याण कर सफलजन्मा बन सकते हैं। सन्ध्या का सम्बन्ध बुद्धि से है और बुद्धि से ही सृष्टि है। अतः बुद्धि-शुद्धि-पूर्वक उसकी अभिवृद्धि के लिए सन्ध्या से बढ़कर कोई अन्य उपाय नहीं है।

सूतक अथवा मृतक अशौच काल में भी 'सन्ध्या-त्याग' न करने का निर्देश महर्षि वशिष्ठ ने किया है।[2] बुद्धिमान्द्य दोष हममें प्रविष्ट न हो, एतदर्थ सभी अवस्था में सन्ध्या एवं सूर्याराधन विधेय है। जिस समय सन्धिवेला आती हैं, उस समय कुछ विश्राम का अवसर होने से मन में बुरी भावनाएं उठती है, वे ही 'दम्भ, दर्प, अभिमान, क्रोध, पारुष्य एवं अज्ञान' रूप में छह प्रधान असुर हैं, वे ही आसुरी सम्पदा बनते हैं। ध्यान से सुबुद्धि स्थिर रहती है। उस समय जो देवासुर-सङ्ग्राम होता है, उसमें देवगण का पक्ष लेने के लिये सन्ध्या-आराधना आवश्यक है।[3] 'महर्षि कण्व' का यह कथन सदा स्मरणीय है—

सर्वेषामपि लोकानां सर्वेषां नाकिनामपि ।
ब्रह्मविष्णुमहेशानां मखानां बहुनाऽत्र किम् ॥१९८॥
सर्वकृत्यं सन्ध्ययैव सम्ययैव सुसाधितम् ।
सन्ध्याभावे सर्वलोकविनाशः सद्य एव हि ॥१९९॥

मार्कण्डेय-स्मृति में भी कहा गया है कि—

सन्ध्यामूलमिद ब्रह्मात्र, मन्त्रमूला च सा परा।
सन्ध्यामन्त्राश्च सर्वत्र, सर्वेषामपि सन्ततम् ॥

इति । रेणुकापुराणेतु—इडैकास्य महाकाली महालक्ष्मीस्तु पिङ्गला । एकवीरा सुषुम्णेयमेवं सन्ध्या त्रयात्मिके'त्युक्तम् । एकवर्षात्मककन्यारूपा वा—'एकवर्षा भवेत् सन्ध्ये'ति कन्याप्रकरणे धौम्यवचनात् ॥"

—ललितासहस्रनाम्नां सौभाग्यभास्करभाष्ये श्रीभास्कररायाः।

(पञ्चमशतकस्य ४२२ तमे नामनि)

२. एताभ्यां पुष्पवद्भ्यां च धारितं जवितं जगत्। ऐसाशास्त्र वचन है।

अनूदकी सन्ध्या

'वृहद्-योगियाज्ञवल्क्य' ने सन्ध्या की आवश्यकता का प्रतिपादन करते हुए कहा है कि—

"किसी कारणवश यदि जल की व्यवस्था न हो सके तो वैसी स्थिति में 'काल-लोप' न करते हुए 'अनूदकी सन्ध्या' कर लेनी चाहिये। मूलतः प्रधान पुरुषातीत की सन्धि होने पर जो सत्त्वगुणशालिनी सन्धि है, वही सन्ध्या कहलाती है। जो अनूदकी सन्ध्या है वह लेप, स्नेह से विवर्जित, सम्पूर्ण भूतों की सन्धिनी-शोधन करनेवाली और भय का नाश करनेवाली है। हृदयरूपी आकाश में स्थित सूक्ष्मरूप से सूर्य की रेखा के प्रतीकात्मक चन्द्र, सूर्य एवं अग्नि के तेज से संस्कृत अण्ड (शरीर) को भेदन कर उत्कृष्ट ज्योति रूप में निकलती हुई दीर्घघण्टा के शब्द के समान, मन से आत्मतत्त्व की अनुभूति का हृदय में ध्यान करना ही अनूदकी सन्ध्या है। सन्धिवेला में ही सन्ध्योपासन करना चाहिये न तो सूर्य के अस्त होने पर और न सूर्य के उदय होने पर।

इन सभी दृष्टियों से विचार करने पर **'सन्ध्या'** न केवल एक सामान्य कर्म ही है, अपितु ज्ञान-विज्ञान से परिपूर्ण, साधना-सदन का मुख्य द्वार, सर्वोपरि करणीय, इहलोक तथा परलोक की साधक, निगम एवं आगम से प्रतिपादित तथा समस्त शास्त्र-वेद, आगम, पुराण, धर्मशास्त्र आदि से अनुमोदित एक विशिष्ट आवश्यक विधान है। यही कारण है कि प्रत्येक धार्मिक व्यक्ति किसी न किसी रूप में सन्ध्या करता ही है। सन्ध्या के पारम्परिक प्रयोग-विधान पर इतना अधिक विस्तृत विचार किया गया कि सभी का एकत्र सङ्कलन सम्भव नहीं है। अतः हमने अत्यावश्यक तथा पूर्वकाल में अप्रकाशित साहित्य एवं प्रक्रिया पर यत्किञ्चित् निर्देश किया है। अभी भी बहुत सी बातें विचारणीय हैं, जिन्हें पृथक् पुस्तक में प्रकाशित करने का हम प्रयास करेंगे।

विद्यारण्यगुरोरनैव-विशद-प्रज्ञान-कासारज-
श्रीमद्-वन्द्यपदारविन्द-मकरन्दामोद-सम्मोदितः।
यत् सत्यं निगमागमेषु गदितं तत्संमतो राजतां,
सन्ध्याया गुणगौरवेण निचितः सोऽयं निबन्धो मम॥

—o—

रुद्रयामलोक्तं

त्रिपदा-गायत्री-स्तोत्रम्[1]

ईश्वर उवाच

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि गायत्री-तत्त्वमुत्तमम्।
स्तोत्रं मन्त्रमयं देव्याः सर्वतन्त्रेषु गोपितम् ॥१॥

आद्य-पञ्चकमीशानां महापातक-नाशनम्।
पुण्यप्रदं वेदसारं सर्वतत्त्वोत्तमोत्तमम् ॥२॥

परमार्थाभिधस्यास्य स्तोत्रस्यास्ति ऋषिः शिवः।
छन्दोऽनुष्टुप् समाख्यातं त्रिपदा देवता स्मृता ॥३॥

तारं बीजं शिवः शक्तिः खं गं कीलकमीश्वरि।
धर्मार्थकाममोक्षार्थे विनियोग इति स्मृतः ॥४॥

चतुर्भुजां कर्मसहस्रकार्थितां त्रिलोचनां हार-किरीट-शोभिताम्।
चतुर्मुखां कामगतां महोज्ज्वलां, विद्येश्वरीं पञ्चमुखीं भजाम्यहम् ॥५॥

विविध-मणि-मयूख-स्फीत-केयूर-हार—
प्रकर-कनककाञ्ची-किङ्किणी-कङ्कणाढ्याम्।
सकल-भुवनरक्षा-सृष्टि-संहार-कर्त्रीं,
परम-निगमविद्यां नौम्यहं वेदधात्रीम् ॥६॥

प्रणवं मनुराजमौलिरत्नं, यदि वेदेश्वरि ! वेदसारभूतम्।
प्रजपेद् हृदये दयासमुद्रं, स भवेद् ब्रह्मविदीश्वरो रविर्वा ॥७॥

---

१. यह स्तोत्र भी मन्त्रादि-तत्त्वगर्भ-स्तोत्र-परम्परा में प्रणीत एक पाण्डुलिपि के आधार पर सम्पादित किया गया है। इसमें कतिपय बीजमन्त्रों के साथ गायत्री-मन्त्र जपने का विधान निर्दिष्ट है। साथ ही उन बीजों के योग से प्राप्त होने वाले फलों का सङ्केत देते हुए यथा-वश्यक स्थान एवं काल के भी निर्देश किये गये हैं। प्रस्तुत स्तोत्र साहित्य एवं तान्त्रिक दोनों ही दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है। इसकी अन्य पाण्डुलिपियां एवं पूर्ण शुद्ध पाठ मिलने पर और भी स्पष्ट मार्ग-निर्देशन प्राप्त हो सकता है। —सम्पादक

शङ्कां जपेद् योऽत्र विहाय शङ्कां, कङ्कालमालाभरणां निशीथे।
कृशानु-भानु-प्रभया समानो, विमानचारी स भवेत् समानः ॥८॥

कंबीजमन्तः शिवशक्तिरूपं, त्रिभिर्जपेद् यस्त्रिपदा-स्वरूपम्।
स कामुकः कामकलाविदग्धो, भवेत् तु रम्भारतभोग-भागी ॥९॥

तार्तीयबीजं तव मन्त्रमध्ये, जपेद् भवानि ! स्मरतत्त्व-चेताः।
समेतकामान् समवाप्य भूमौ, भवेत् स वै भूप-वधू-जनेन्द्रः ॥१०॥

वाणी च वानीरतले जपेद् यो, दशायुतं दुर्दशयाऽभिभूतः।
स वैरिगर्वं समरे निहत्य, भवेद् भवानीतनयो दिवीन्द्रः ॥११॥

स्मरं जपेद् यस्तव मन्त्रबीजं, त्रिलोचने-लोचन-भोगकामी।
सुलोचना-लोचन - वीक्षण-प्रभा - पीयूषराशीवृतसङ्कुलात्मा ॥१२॥

परां जपेद् यः परमार्थरथ्यां, निर्वाणरथ्यां तव पञ्चवक्त्रे।
समस्तलोकाधिपतिः पुरेशो, भवेत् परानुग्रहभाजनं सः ॥१३॥

लक्ष्मीं जपेद् यः परवर्गभीतः, श्मशानभूमौ शिववेषधारी।
तस्यात्र वश्या कमला करस्था, या विष्णुपत्नी कमलाकरस्था ॥१४॥

भीमां जपेद् योऽत्र रतान्तकाले, नितान्तमम्भोजदलं करस्थाम्।
स भीमरूपारिकुलं निहत्य, प्रान्ते लभेत् कान्तपदं त्रिपाद्याः ॥१५॥

पठेज्जपेद् यः शुचिरर्चनीयां चतुर्भुजां हव्यभुजः स दक्षः।
स गाणपत्यं प्रणिपत्य देवीं, लक्ष्मीं भवेदीश्वरसिद्धिनाथः ॥१६॥

गायत्री-त्रिविधाक्षरत्रयमिदं वेदार्थ-तत्त्वं परं,
यो ध्यायेद् हृदयारविन्दकुहरे प्रातर्निशीथे तथा।
चैनाचार-विचारमार्ग-निपुणो वेदान्तसारद्वय—
प्रोद्भूतागमतत्त्ववित् स त्रिपदीधाम स्वयं प्राप्स्यति ॥१७॥

रामायुगं यो गिरियोनिगर्भान्तरे जपेच्चिद्गिरिणा सरम्भया।
स योनिगम्यो गुरुगर्वहारी, गिरा भवेदिन्द्र-समर्चिताङ्घ्रिकः ॥१८॥

मायां जपेद् यः स्मरसक्तचेता, जटाकिरीटेन्दुकलान्त-बाधः।
स वैष्णवेन्द्रो ललनाऽथ योनिस्फुरन्मणिः स्यान्नितरां नताङ्घ्रिः ॥१९॥

माबीजमिन्दुस्फुरितोर्ध्वबीजं, जपेन्निशीथे मणिपीठ-संस्थः।
यो धी-रमातैकपरः ससन्ध्यो, भवेद् धरायां नृपसार्वभौमः ॥२०॥

मायापुटां योऽत्र जपेद् रतादौ, तन्वीमुखासक्तमुखो निशान्ते।
स लोकपालार्चित-पादपद्मो, भवेज्जगत्यां भुवनाधिनाथः ॥२१॥

वाणीं जपेद् यो जडभावयुक्तो, वेदान्ततत्त्वैकरसो भवानि।
तस्यास्यपद्मे वसतिं विधाय, बिभर्ति वाणी विवशा सभायाम् ॥२२॥

यो वायुपूजां सुरभावतेजाः जपेन्निशीथे शशिखण्डचूडः।
स वायुपूज्यो बलवान् प्रयाति, तद्वायुतल्पं त्रिदिवेन्द्र ! सत्यम् ॥२३॥

मन्त्रं मनोऽन्तर्जपति स्मरार्तो, यो वेदमातुर्विवशावसाने।
वश्योर्वशी तस्य पदारविन्दं, शुश्रूषमाणा भविता भवानि ! ॥२४॥

मन्त्रान्तःस्थां ठद्वयीं वै जपेद् यस्तेजोरूपं साधकः साधकेशि !।
तस्यास्ये स्याद् भारती तस्य हस्ते, लक्ष्मीः कुर्याद् दाससाकल्य-कालम् ॥२५॥

भूगेह-वृत्तत्रय-षोडशास्त्र-दिक्कोणयुक्ताग्निविराजमानाम्।
निषेदुषीं शीघ्र-रसाकुलाक्षीं, त्र्यक्षीं त्रिमूर्तिं त्रिपदीं भजामि ॥२६॥

देवि त्रैलोक्यमार्तविविधकुसुमधृक् ध्वस्त-सर्वान्धकारे,
नाना रत्नप्रभाढ्ये त्रिनयन-विलसत्सूर्यचन्द्राग्निरूपे।
पीठेशी-पञ्चवक्त्रे धवलमणिनिभे भासुरे नूपुराढ्ये,
श्रीमन्नीलोत्पलाभे सपदि वरकरे ! देवि मातः प्रसीद ॥२७॥

इति स्तोत्रं पुण्यं पर-मनुमयं तत्त्वसहितं,
पठेद् यो गायत्र्या निशि कुजदिने वापि सततम्।
समन्तात् तस्यार्थागम-पुर - पुराणार्थ - सहिता,
गृहे लक्ष्मीः प्रान्ते परपदविधात्री विलसति ॥२८॥

इतीदं देवि ! पञ्चाङ्गं सर्वस्वं सारमुत्तमम्।
गायत्र्याः स्तवमीशानि ! चतुर्वेद-रहस्यकम् ॥२९॥

अश्रद्धायुतायाभक्ताय, कुशीलाय दुरात्मने।
अदेयं सर्वथा नित्यं, दत्त्वा नियममाप्नुयात् ॥३०॥

शिष्याय भक्तियुक्ताय गुरु - भक्ताय पार्वति।
दीक्षिताय कुलीनाय देयं साधकसत्तमे ! ॥३१॥

इतीदं देवि गायत्र्यास्तवोक्तं सरहस्यकम्।
गुह्यं गोप्यं महत्तत्त्वं, गोपनीयं मुमुक्षुभिः ॥३२॥

इति श्रीरुद्रयामले 'गायत्री-रहस्ये' गौरीशङ्करसंवादे

त्रिपदा-गायत्री-स्तोत्रम्।

विश्वामित्रकल्पोक्तः सन्ध्यान्तर्गताचमन-मार्जनार्घ्य—

गायत्रीजपादिविचारः

आचमनप्रकारः

देवतागारमागत्य समाचामेद् यथाविधि ।
केशवनारायणमाधवैः पीत्वा जलं त्रिधा ॥
करौ गोविन्दविष्णुभ्यां क्षालयेद् मधूसूदन— ।
त्रिविक्रमाभ्यामौष्ठौ वामनश्रीधराभ्यां मुखम् ॥
हृषीकेशेन हस्तौ च चरणौ पद्मनामतः ।
दामोदरेण मूर्धानं प्रोक्ष्य सङ्कर्षणादिकान् ॥
मुखादिष्वङ्गुष्ठांगुल्या वेदादिप्रीणने न्यसेत् ।
मुखे सङ्कर्षणं वासुदेव—प्रद्युम्नकौ नसौ ॥
अनिरुद्धं च पुरुषोत्तममक्षणोः प्रविन्यसेत् ।
अधोक्षजं नृसिंहं च कर्णयोर्नाभितोऽच्युतम् ॥
जनार्दनं हृदि न्यस्य उपेन्द्रमपि मूर्धनि ।
ऊर्ध्वे ज्योतिर्मयं वक्त्रं शिखाकारं तदन्तरे ॥
श्रीचक्रराजचिह्नं तु परब्रह्मात्मकं विभुम् ।
अंसयोश्च हरिं कृष्णं वैष्णवाचमनं त्विदम् ।
केशवादि-चतुर्थ्यन्ता नमोन्ताः प्रणवादिकाः ॥

मार्जनम्

पादं पानं क्षिपेन्मूर्ध्नि प्रतिप्रणवसम्पुटम् ।
निक्षिपेदष्टपादं तु अधो यस्य क्षयाय च ॥
अष्टाक्षरं नव-पदं पदादौ ब्रह्महा भवेत् ।
आदौ यो मार्जनं कुर्यात् सोऽश्वमेधफलं लभेत् ॥
यस्य क्षयायपादं तु आपः सिन्धुत्वमेव च ।
भूमौ पादौ विनिक्षिप्य इतरन्मूर्ध्नि विन्यसेत् ॥

अर्घ्यम्

सन्ध्यावन्दनवेलायामर्घ्यं दद्यात्त्रयं बुधः ।
सायं प्रातः समानं स्यान्मध्याह्ने च पृथग् विधिः ॥

एकं मध्याह्नकाले तु सायं प्रातस्त्रयस्त्रयः।
एवं ज्ञात्वा सृजेदर्घ्यं सूर्यं नक्षत्रपूर्वकम्॥
एकं शस्त्रास्त्रनाशाय एकं हनन-नाशने।
असुराणां वधायार्घ्यं प्रायश्चित्तार्घ्यसंयुतम्॥
दद्यात् केवलगायत्र्या मूढो ह्यर्घ्यं तु यो द्विजः।
स बिन्दुब्राह्मणो नाम सर्वधर्मबहिष्कृतः॥
ब्रह्मास्त्रं नाभिजानाति स विप्रः शूद्र एव हि।
तस्य कर्मादिकं जातं धर्माद्यं निष्फलं भवेत्॥
बीजमन्त्रेण गायत्र्या प्रणवेत्यभिधीयते।
देहस्तु दण्ड इत्युक्तः संज्ञा कवचमेव हि॥
सर्वाङ्गानि पदो मन्त्रं सर्वमन्त्रे त्वयं विधिः।
अस्त्राष्टवारतः प्रोक्ता गायत्री व्याप्य उच्यते॥
एतत् षण्मन्त्रकं ज्ञात्वा अर्घ्यं दद्याद्धि नामतः।
अर्घ्यत्रय—प्रयोगार्थं प्रायश्चित्तं चतुर्थकम्।
सायं प्रातर्द्विजादीनामेवमेव विधिः क्रमात्॥
ब्रह्मास्त्रं ब्रह्मदण्डं च ब्रह्मशीर्षं च संयुतम्।
अर्घ्यत्रयं प्रयोगार्थमेवमेवमुदाहृतम्॥
शस्त्रमादौ ततो दण्डं शिखास्त्रीणि समुच्चरेत्।
पर्यायेण त्रिरुच्चार्यमञ्जलिं च त्रिधा हरेत्॥
अर्घ्यत्रयं प्रयोक्तव्यमभिमन्त्रितमञ्जलिम्।
त्रियुक्तं विसृजेदर्घ्यमसुराणां वधाय च॥
अस्त्रदण्डशिरोयुक्तमर्घ्यमेकं समुच्चरेत्।
अस्त्रं वाहनरक्षोघ्नमेकाञ्जलि जलं क्षिपेत्॥
प्रायश्चित्तं द्वितीयार्घ्यमसुराणां वधाय च।
प्रदक्षिणं पृथिव्यां च सर्वपापैः प्रमुच्यते॥

गायत्री-जपप्रकारः

ॐकारं पूर्वमुच्चार्य भूर्भुवःस्वस्तथैव च।
गायत्रीं प्रणवान्तां च मध्ये त्रिप्रणवां तथा॥
एवं नित्यजपं कुर्य्याद् ब्राह्मणो विप्रपुङ्गवः।
भिन्नपादा तु गायत्री ब्रह्महत्या—प्रणाशिनी॥
अभिन्नपादा गायत्री ब्रह्महत्यां प्रयच्छति॥
अच्छिन्नपाद—गायत्रीजपं कुर्वन्ति ये द्विजाः।
अधोमुखाश्च तिष्ठन्ति कल्पकोटिशतानि च॥

धर्मशास्त्र—पुराणेषु इतिहासे च सुव्रत।
पञ्च—प्रणव—संयुक्तां जपेदित्यनुशासनम्॥

जपसंख्याष्टभागान्ते पादो जाप्यस्तुरीयकः।
स द्विजः परमो ज्ञेयः परं सायुज्यमाप्नुयात्॥

प्रातः केवलगायत्री मध्याह्ने व्याहृतीयुता।
सायाह्ने तुर्यया युक्ता नित्यं जाप्यं समाचरेत्॥

पादादौ रेफसंयुक्ता गायत्री—जप लक्षणम्।

पादत्रयं समुच्चार्य प्रतिलोमं ततश्चरेत्।
रेफ-बिन्दू तदाद्यन्तौ गायत्री—जपमाचरेत्॥

गायत्रीं पूर्वमुच्चार्य तुर्यान्त्यादि-विलोमतः।
सायं सन्ध्यां जपेदेवं साधक सर्वसिद्धये॥
तकारादि यकारान्तमनुलोमं विलोमतः।
तुर्यपादं विना मन्त्रं प्रातः सन्ध्यामथाचरेत्॥
भकारादिह्िकारान्तं मध्यपादमिति स्मृतम्।
तार्तीयं तु प्रयोक्तव्यं तदर्घ्यं प्रथमं भवेत्॥
धकारादि यकारान्तं तृतीयं पादमुच्चरेत्।
प्रथमं च द्वितीयं च त्रिविधं जपलक्षणम्॥
कालत्रयं त्रिधा जाप्यं त्रिकालं त्रिविधं स्मृतम्।
अनुलोम-विलोमाभ्यां चिरं सिद्धिमवाप्नुयात्॥
चतुर्विंशतिवर्णानामनुलोमं जपेदपि।
पूर्णजाप्यफलं नास्ति अर्धजाप्यफलं लभेत्॥
चतुष्पादं तु गायत्र्या अनुलोम-विलोमतः।
नित्यं जाप्यं प्रकुर्वीत भुक्तिमुक्ती लभेन्नरः॥
नित्यनैमित्तककाम्यादि-व्यस्ताव्यस्तं जपेन्मनुम्।
प्रातर्मध्याह्न—सायाह्ने जपेदेवं क्रमेण तु॥
जपपारायणं कुर्यात् त्रिपदा-सम्पुटं नव।
एवं ज्ञात्वा जपेन्नित्यमेककोटिगुणं भवेत्॥
कालत्रयं यथोक्तं च जाप्यपारायणं परम्।
अनन्तफलमाप्नोति सत्यं सत्यं न संशयः॥
वरेण्यं विरलं चोक्त्वा जपकाले विशेषतः।
पारायणेषु युक्तं स्यादन्यथा विफला भवेत्॥

□